तोता बना गवाह, बोला-पति हत्या से पहले कह रहा था ग्लेन्ना गोली मत चलाओ; अमेरिकी कोर्ट ने पत्नी को दोषी ठहराया
अमेरिका में एक अनोखा मामला सामने आया है। एक कोर्ट ने तोते की गवाही के आधार पर फैसला सुनाया है। यह मामला मिशीनगन का है। कोर्ट ने एक महिला को पति की हत्या के मामले में तोते का बयान के आधार पर दोषी ठहराया। दरअसल, ग्लेन्ना दुरस ने 2015 में तोते के सामने अपने पति मार्टिन पर गोली चलाई थी। ग्लेन्ना ने मार्टिन को एक-दो नहीं, पांच गोली मारी थी। उसके बाद उसने खुद को भी गोली मारकर आत्महत्या की कोशिश की थी। उस वक्त घर में सिर्फ तोता मौजूद था। इस तोते का नाम बड है। तोते ने बाद में घर वालों को आखिरी बात को बोलकर सुनाया था। कोर्ट में सुनवाई के दौरान मार्टिन की पहली क्रिस्टिना केलर ने कोर्ट को तोते की बात वीडियो में रिकार्ड कर दिखाया। उसने जूरी से कहा कि जब हम घर पहुंचे तो तोते ने मार्टिन की आवाज में बार-बार कहा 'गोली मत चलाओ' इस आधार पर जूरी ने पाया कि 49 वर्षीय ग्लेन्ना हत्या की दोषी है। उसे अगले महीने सजा सुनाई जाएगी। हालांकि बड नाम के इस तोते को कोर्ट में सुनवाई के दौरान नहीं लाया गया। वकील ने गवाह के तौर पर तोते को पेश करने की अनुमति कोर्ट से मांगी थी, लेकिन इसे खारिज कर दिया गया।
घटना में ग्लेन्ना के सिर में चोट लगी थी। हालांकि वह बच गई। घटना मिशीगन में उनके सैंड लेक स्थित घर में हुई थी। फैसले के दौरान मार्टिन की मां लिलियन भी कोर्ट में मौजूद थी। उन्होंने कहा, 'कोर्ट में ग्लेन्ना को देखकर बहुत दुख हो रहा कि दोषी ठहराई जाने के बाद भी उनमें पछतावे का भाव नहीं है। न्याय मिलने में देर हुई, जो अच्छा नहीं है। दो साल का वक्त कम नहीं होता है। तोता हर बात को पकड़ लेता है। यह कुछ भी बोल सकता है। उसकी जुबान बहुत साफ है। मार्टिन की पहली पत्नी क्रिस्टिना अब तोते की देखभाल करती है। उन्होंने कहा 'तोता हत्या की उस रात की पूरी बातचीत को दोहरा रहा था और वह बातचीत गोली मत चलाना पर जाकर खत्म हो गई। केस से पता चलता है ग्लेन्ना और मार्टिन के बीच जुआ चल रहा था। मार्टिन की हत्या उसके घर की नीलामी से एक महीने पहले हुई थी। ग्लेन्ना को इस मामले में अगस्त में उम्र कैद की सजा हो सकती है।

छोटे कमरे में कैद है आईएस के 100 आतंकी, सेना ने कहा-मानवाधिकार की उम्मीद न करें
टोक्यो यह तस्वीरे इराक में कैद आईएस आतंकियों की है। मीडिया में दो दिन पहले आए वीडियो में एक छोटे से कमरे में करीब 80 से 100 के बीच आतंकी दिख रहे हैं। इसे देखकर कई लोगों ने लिखा कि ये लोग भले ही आतंकी हैं। तब भी उन पर अत्याचार ठीक नहीं है। पर सेना के एक अधिकारी ने कहा कि आतंकियों के खिलाफ मानवाधिकार की उम्मीद करना बेकार है। जो हो रहा है, वह ठीक है।

जापान में रिटायन नहीं होना चाहते डॉक्टर
टोक्यो जापान के डॉक्टर रिटायर होने के खिलाफ हैं। ऐसे ही डॉक्टरों के एसोसिएशन के राजधानी में प्रदर्शन किया। पर यह विरोध नहीं, काम करते रहने की इजाजत के लिए किया गया प्रदर्शन था। एक डॉक्टर ने कहा, ''हमें 65 साल की उम्र में रिटायन कर दिया। पर हम काम करते रहना चाहते हैं। हम इसके लिए सैलरी नहीं चाहते। बस हमें अस्पतालों में बतौर् वॉलेंटियर नियमित बैठने दिया जाए।'

सुकुमालन नन्दी जी ससंघ, आचार्य पद्मनन्दी जी ससंघ, आचार्य कल्याणसागरजी, आचार्य उदार सागरजी ससंघ, आचार्य विमदसागरजी ससंघ, उपाध्याय सुरदेव सागर जी ससंघ, आचार्य तीर्थनन्दी जी, मुनि प्रसन्नसागरजी, चिन्मयानन्दजी, दयाऋषि जी, सिद्धान्तसागर जी, आज्ञासागरजी, सहजसागर जी, प्रबलसागरजी।
आर्यिका सुप्रकाशमती माताजी ससंघ, भरतेश्वरी माताजी, मुक्तिश्री, सौहार्दमति आदि अनेक साधु-साध्वियों व्रती ब्रह्मचारी साधकों का श्रीक्षेत्र पर दर्शनार्थ आगमन हो चुका है
अन्य भी साधु वृन्द यहाँ पधारे ऐसी भावना करता हूँ। देश-विदेश के सभी भक्त श्रद्धालु हिताकांक्षीजन आकर इसे समता तीर्थ धाम में धर्म लाभ लेकर सुखी शान्त व प्रगतिशील बनकर अपने मानव जीवन का कल्याण करें ऐसी शुभ भावना रखता हूँ।
इस क्षेत्र के विकास व उत्थान में जिन महानुभवों का तन-मन-धन-श्रम समय से स्वेच्छिक सहयोग व सहायता प्राप्त हो

रही है एवं भविष्य में भी मिलने वाली है उन सभी भक्त श्रद्धालु नर-नारी-अबाल-वृद्धजनों के प्रति मैं व सीपुर परिवार हार्दिक कृतज्ञता व धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।
विशेष रूप से में सलूम्बर निवासी श्री भगवान लाल जी रायकिया का जीवन भर आभारी व कृतक्ष रहूंगा जिन्होंने मुझे सर्व प्रथम इस क्षेत्र के विषय में मेरा ध्यान आकर्षित कराकर मुझे प्रेरित किया।
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखभाग भवेत।।
दि. 3.5.2017
देव शास्त्र गुरू आराधक
नितिन जैन,
समता तीर्थधाम, अतिशय क्षेत्र सीपुर
तह-सराड़ा, जिला-उदयपुर (राज.)

सज्जन व दुर्जन की प्रवृत्ति
सत्य-असत्य-हित-अहित कर परिज्ञान नहीं होने के कारण
आचार्य कनकनंदी
(चाल :- छोटी छोटी गैया)
अज्ञान मोह व स्वार्थ के कारण, जीव न जानते हैं सत्य-असत्य।
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-मद के कारण से, नहीं जानते हैं हित-अहित।।
जिससे वे स्व दोषों को न जानते, अतएव दोषों को न दूर करते।
अन्य के गुणों को भी दोष मानकर, उनकी निंदा व वैर करते।। (1)

दुष्ट कमठ न स्व दोष को जाना; पार्श्वनार्थ भगवान् को दोषी माना।
उनके ऊपर उपसर्ग किया, तथापि पार्श्व ने क्षमा धारण किना।।
सुकरात को भी दोषी मानकर, विष पिलाकर उन्हें मारा।
ईसा मसिह से लेकर मीराबाई तक से, ऐसा ही दुर्व्यवहार हुआ।। (2)

तो भी महान्-सज्जन-संत, समता-शांति को नहीं त्यागते।
स्व पर विश्व कल्याण हेतु मैत्री, प्रमोद कारूण्य माध्यस्थ भाव रखते।।
इससे अनेक दुष्ट जीव भी, स्व-दोष त्यागकर पावन बनते।
महान् जनों से वैरत्व तयागकर, उनके भक्त व अनुयायी बनते।। (3)

पार्श्वनाथ की क्षमा के कारण, पार्श्वनाथ बन गये शुद्ध-बुद्ध।
उनकी प्रतिमा व महिमा अभी तक, जगत में हो रही प्रसिद्ध।।
ईसा मसिह के क्षमा के कारण, उनके अनुयायी सब से अधिक।
ऐसा ही सुकरात से लेकर, मीराबाई की प्रसिद्धि है अभी तक।। (4)

रत्नाकर डाकू बना बालमकी, अंगुलीमाल बना बुद्ध भक्त।
उपसर्ग स्थान भी बन गये, पावन क्षेत्र जिसको पूजते भक्त।।
घर्षण से होती अग्नि उत्पत्ति, घानी से पीलने से निकलता तेल।
ताप-ताडन से सोना बनता कुंदन, मक्खन से तथाहि घृत।। (5)

अंधेरे से दीपक बुझता नहीं, अंधेरा से दीपक नहीं डरता।
अंधेरा को ही दीपक दूर कर के, प्रकाश को दूर तक फैलाता।।
अनादिकालीन कर्म संस्कार से, जीवों की होती है विपरीत प्रवृत्ति।
इसे दूर हेतु चाहिए उत्तम, तयाहि जिज्ञासु व विनम्र वृत्ति।। (6)

अध्ययन-मनन-चिंतन-ध्यान से, आत्मा को करना होगा पावन।
पावन आत्मा ही सत्य व हित जानकर, उसत्य-अहित करे परिमार्जन।।
अन्यथ अन्धे यथा न देख पाते सूर्य तथाहि मोहान्धों की दशा।
मोहांघ दूर हेतु 'कनकनंदी' ने, दया से द्रवित हो इस काव्य को रचा ।। (7)
चितरी 07/12/2017 मध्यह्न 2:12
(यह कविता नरेश (चितरी) के कारण बनी।)
(नरेश ने बोला, ''गुरूदेव आप को मैं (आत्मा) व स्वाध्याय
देश-विदेशों में आप के शिष्यों के द्वारा धर्म प्रचार हो रहा है। ऐसा बोलते हो इसे हम आप का घमण्ड मानते थे इससे यह कविता बनी।)

स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्ट्यूट की रिसर्च रिपोर्ट के सामने आए आंकड़े 5 साल के बाद बढ़ा व्यापार
दुनिया-भर के 100 बड़े हथियारों का व्यापार 15 साल में 38% बढ़ा; 13 लाख करोड़ रू के व्यापार के साथ अमेरिका पहले नंबर पर रहा
पिछले 15 साल में दुनिया भर में 100 बड़े हथियारों का व्यापार 38% बढ़ा है। वहीं 2016 से लेकर अब तक इस व्यापार में 19% का इजाफा हुआ है। दुनिया भर में हथियारों का कुल जितना व्यापार हुआ, उसमें सबसे ज्यादा 57.9% शेयर अमेरिका का रहा। दूसरा सबसे ज्यादा शेयर ब्रिटेन का और तीसरा रूस का रहा। भारत की भी दुनिया भर के हथियार व्यापार में 1.6% की हस्सेदारी है। लिस्ट में भारत 11वें नंबर पर है। हथियार व्यापार में 2.2% शेय के साथ दक्षिण कोरिया भी टाप-10 में है, लेकिन उत्तर कोरिया लिस्ट में नहीं है। ये सारी बातें स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (एसआईपीआरआई) की रिसर्च रिपोर्ट से सामने आई है। रिपोर्ट के मुताबिक पिछले पांच साल में पहली बार दुनिया में हथियारों के व्यापार में इजाफा हुआ है। इससे पहले ये आंकड़े लगातार नीचे गिर रहे थे। 2016 में दुनिया में 24 लाख करोड़ के हथियार खरीदे-बेचे गए। अमेरिका में कुल 13 लाख करोड़ रूपए का हथियार व्यापार हुआ। इसमें बड़ा शेयर अमेरिका के हथियार निर्माता लॉकहीड मार्टिन का रहा। लॉकहीड ने ब्रिटेन, इटली, नॉर्वे के साथ एफ-35 की डील की थी। टेंक बनाने वाले जर्मनी के ग्रुप क्रॉस मेफई ने भी मिलिट्री वाहनों के कई सौदे किए। इस डील के दम पर ही जर्मनी का हथियार व्यापार में शेयर 1.6% रहा। एसआईपीआरआई के प्रोग्राम डायरेक्टर ऑड फ्लूरेंट कहते हैं- 'दुनिया भर में हथियारों का व्यापार बढ़ा है। हालांकि इससे ये नहीं कह सकते कि युद्ध की आशंका भी बढ़ी है, क्योंकि इस व्यापार में युद्ध मटैरियल जैसे वाहन और सुरक्षा उपकरण जैसे हेलमेट-जैकेट का व्यापार भी शामिल है। उदाहरण के लिए दक्षिण कोरिया। ये देश टॉप-10 की लिस्ट में है; लेकिन इनका ज्यादातर व्यापार अपनी सुरक्षा पर ही हुआ है, ना कि युद्ध भड़काने वाले हथियारों पर। फिर भी कुछ खतरा तो बेशक बढ़ा ही है।
हालांकि चीन और उत्तर कोरिया का नाम लिस्ट में ना होने से खुद फ्लरेंट भी हैरान हैं। वो कहते हैं - 'ये बात हमें लिस्ट तैयार करते हुए भी महसूस हुई थी, लेकिन हमारे पास जो डेटा थे उसी के आधार पर हमने नतीजे दिए। चीन की हथियार और युद्ध उपकरण निर्माता कंपनियां दुनिया की टॉप-20 में से हैं, फिर भी वो इस लिस्ट में शामिल नहीं है। इस कारण ये भी है कि चीन अपने देश के ज्यादा आंकड़े भी सार्वजनिक नहीं करता।'

सरल-सादा होने से मुझे प्राप्त लाभ
आचार्य कनकनन्दी
(चाल : शक्ति)

कोई जाने या न जाने, में रहूँ सरल-सीधा/(सादा)
कोई माने या न माने, मैं बनूँ आत्मवेत्ता।
मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता, मैं ही बनूँ विधाता
यह ही मेरा साधन, यह ही मेरी साधना।। (1)

मुझ में ही मेरे द्वारा, स्वहित हेतु करूँ,
सरल-सहल भाव समता-शान्ति करूँ। (धरूँ)
पर प्रपंच आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड छोड़ूँ,
दबाव-प्रलोभन भय व वर्चस्व त्यागूँ।। (2)

परावलम्बन व पर प्रतीक्षा व आशा त्यागूँ,
उपेक्षा भी न करूँ, अपेक्षा भी मैं त्यागूँ।
प्रशंसा हेतु न करूँ प्रशंसनीय ही करूँ,
परनिन्दा को मैं त्यागूँ, निन्दनीय भी न बनूँ। (करूँ)।।(3)

अज्ञानी व मोही स्व-दोष गुण भी न जानते/(मानते)
पर को जानने हेतु, प्रयत्न भी वे करते।
वृक्ष में भी होता है, यथा प्रकाश-स्वाद ज्ञान,
दोषी (व्यक्ति) में भी होता है, अन्य के दोष गुण ज्ञान।। (4)

सरल-सहज से स्वयं को ही लाभ होते,
तनाव-दुश्चिन्ता-भय, संकेश-द्वन्द्व न होते,
दूसरों के उपर भी, प्रभाव उत्तम भी होता,
बिना उपदेश से भी, परिवर्तन शुभ होता।। (5)

स्वभाव मार्दव से मिथ्यादृष्टि भी सुवर्ग में जाता,
स्वभाव मार्दव से सुदृष्टि मोक्ष तक भी पाता।
स्वभाव मार्दव से भोगभूमिज भी सुख पाते,
मनुष्य से सिंह तक, निर्द्वन्द्व से जीवन जीते।। (6)

सरल-सहज से तन-मन भी हल्के होते,
श्रेष्ठ व किष्ठ काम भी सहजता से हो जाते,
भक्त-शिष्य बन कर, अन्य भी सेवादान करते।
'कनक' निराकुल ही आत्मसाधना में ही रत रहते।। (7)
चितरी 6.12.2017 रात्रि 8.12
(यह कविता अक्षय शौर्य व कु सांक्षी, ब्र. पल्लवी, ब्र. रोहित के कारण बनी।)

कर्म तेरी अनंत शक्ति
आचार्य कनकनंदी
(चाल गंगा तेरा पानी अमृत)
कर्म! तेरी अनंत शक्ति सर्वज्ञ ज्ञानगम्य होय।
तेरी शक्ति से संचालित जीवों के संसार परिभ्रमण होय।। (स्थायी)

अनंत शक्ति संपन्न जीवों को तू ही किया है परतंत्र।
अनादि काल से संसार मध्ये घूम रहे हैं यत्रतंत्र।।
तेरे भेद हैं दो-तीन या आठ-संख्य-असंख्य अनंत।
तेरा प्रमुख भेद भाव कर्म जिससे जन्मे (तेरे)रूप अनंत।।(1)

राग-द्वैष-मोह-काम-क्रोध-मद-ईर्ष्याँ-घृणा-तृष्णादि तेरा भाव रूप।
इससे ही तेरे सभी रूप जन्में जिससे प्रगट संसार रूप।।
सूक्ष्म जीव (निगोदिया) से लेकर पशु-पक्षी व मानव नारकी देव।
तेरे ही उपज है मिथ्यादृष्टि से लेकर अरिहंत परमेष्ठी/(तक) देव।।(2)

चार गति चौरासी लक्ष्य योनि व चौदह मार्गणा व गुणस्थान।
दीन-हीन व धनी-गरीब मालिक-मजदूर तेरे रूप विभिन्न। (नाम)।।
संसार मध्य में जन्म-मरण व रोग-शोक-सुख-दुख।
बाल-यौवन-प्रौढ-वृद्ध-सुंदर-असुंदर तेरा ही विभिन्न रूप।।(3)

शत्रुता-मित्रता अपना-पराया भाई-बंधु कुटुम्ब-समाज।
साधमी-विर्धमी-अधर्मी-कुधर्मी तेरा ही विचित्र काम।।
आकर्षण-विकर्षण-द्वंद्व कलह आक्रमण युद्ध व संहार।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार-मिलावट व भ्रष्टाचार।। (4)

फैशन-व्यसन-आडम्बर-ढोंग-पाखण्ड व आतंकवाद।
जाति मत-पंथ-राष्ट्र कला-गोरा उँच-नीच वैर-विरोध।
संस्कार-संस्कृति शिक्षा राजनीति-नीति नियम व कानून।
रीति-रिवाज व पर्व-परम्परा व सभ्यता कला विज्ञान ।। (5)

इत्यादि तेरे अनंत रूप को अज्ञानी मोही न समझ पाते।
अहंकार ममकार के वशवर्ती होकर स्व-शुद्ध स्वरूप न जानते।।
जो आत्म श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र से अहंकार (ममकार) (को) नाशते।
समता-शांति आत्मशुद्धि करते वे आत्मशक्ति बढ़ाते ।। (6)

जिस से वे तेरा विनाश करके, अनंत आत्म वैभव को पाते।
स्व आत्म वैभव पाने हेतु ही 'कनक' तेरा विनाश चाहते ।। (7)

संदर्भ - जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप
मग्गणगुणठाणेहि च चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। (13)

Again,according to impure.(vyavahara) Naya, Samsari jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं।
शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध हैं ही परंतु संसारी जीव भी शुद्ध क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य कर ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त है। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद-प्रभेद हो जाते है क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत हैं और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण है। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनकार उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान, (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते और उस अंतर्भेदों में भी अनेक प्रभेद होते हैं इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।
मार्गणा
जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।
ताहो चोद्स जाणे सुण्णाणे मग्गणा होंति।।

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं - अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी है।
चौदह मार्गणाओं के नाम
गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे च ।
संजमंदसणलेस्सा भविषसम्मत्तसण्णिआहारे।। (142)
1. गति मार्गणा 2. इन्द्रिय मार्गणा 3. कार्य मार्गणा 4. योग मार्गणा 5.वेद मार्गणा 6.कषाय मार्गणा 7. ज्ञान मार्गणा 8.संयम मार्गणा 7. दर्शन मार्गणा 10.लेश्या मार्गणा 11. भव्य मार्गणा 12.सम्यक्त्व मार्गणा 13.संज्ञी मार्गणा 14.आहार मार्गणा।
गति मार्गणा
गइउदयपज्जाया चउगइगणस्स हेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइ त्ति य हवे चदुधा।। 146
गति कर्मोदय जनित पर्याय ''गति'' है अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। वे गतियाँ चार हैं - 1. नकर गति, 2. तिर्यच गति, 3. मनुष्य गति, 2. देव गति
इन्द्रिय मार्गणा-
अहमिंदा जह देव, अविसेसं अहमहं ति मण्णंता।
ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिये जाण।। 64
जिस प्रकार अहमिन्द्र देव बिना किसी विशेषता के ''मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ।'' इस प्रकार मानते हुए प्रत्येक स्वयं को स्वामी मानता है उसी प्रकार इन्द्रियों को जानना चाहिए।

मेरे अनुभव
स्वप्न - शकुन - अंगुस्फुरण सत्य व इससे प्राप्त शिक्षायें
आचार्य कनकन्दी
(चाल : आत्मशक्ति)
स्वप्न-शकुन व अंगस्फूरण को मैं सत्य रूप में अनुभव किया।
जैन-हिन्दू-बौद्ध ग्रन्थों में इस सम्बन्धी भी अध्ययन किया।।

वैज्ञानिक अनुसंन्धानों से सत्य रूप में हो रहा है सिद्ध।
मैंने मेरे हजारों अनुभवों से, बालकाल से पाया सत्य सिद्ध।
इससे मुझे हो रहा परिज्ञान, फायड के मत है न पूर्ण सत्य।
कामुकता के कारण सभी प्रकार के स्वप्न न होते दर्शन ।। (1)

ऐसा ही जो मानते हैं हर प्रकार के शकुन होते अन्धश्रद्धा।
वे भी न होते हैं यथार्थ ज्ञानी, उन्हें न ज्ञात हैं रहस्यविद्या।
सुयोग्य क्षेत्रकाल भावयुक्त स्वप्त-शकुनादि होते हैं सत्य।
ये सभी शुभाशुभ सूचक मात्र हैं, न होते हैं उपादान। (प्रमुख) सत्य(2)

इन सभी अनुभवों से मुझे मिल रही है अनेक शिक्षायें।
सामान्य लोगों से लेकर वैज्ञानिकों में नहीं है परम ज्ञान।
सभी में न होते हैं सभी प्रकार के अनुभवतात्मक सही परिज्ञान।
स्व-स्व संकीर्ण ज्ञान से वे, करते हैं सर्वज्ञ समान कथन।। (2)

इससे मुझे प्रेरणा व प्रोत्साहन भी विविध मिल रहे हैं।
सामान्य जन से लेकर वेज्ञानिक तक से आगे का ज्ञान करता हैं
पूर्व के महान् ज्ञानी प्रति भी, मेरा सम्मान भी बढ़ रहा है।
स्व आत्मिक शक्ति प्रति भी, 'कनक' का गौरव बढ़ रहा है।।

चितरी 14.12.2017, उपराह्न 3.15
(चितरी के निस्पृह-निराडम्बर चातुर्मास से प्राप्त शिक्षा से यह कविता बनी।)

जीन पढ़ लेती है मानव मन
भावनाओं को समझने में महिलाएं हैं ज्यादा सक्षम
नए शोध से पता चला है कि लोगों के विचारों व भावनाओं को पढ़ने की क्षमता पर डीएनए का प्रभाव होता है। दुनिया भर के 89,000 लोगों के एक अध्ययन पाया गया है कि यह क्षमता डीएन के क्रामोसोम 3 की वजह से आती है। यह क्षमता महिलाओं में अधिक होती है, क्योंकि पुरूषों में इसका असर नहीं के बराबर होता है। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के वरूण वारियन का कहना है कि मानव जिनोम में भिन्नता को लेकर किया गया यह दुनिया का सबसे बड़ा अध्ययन है। शोधकर्ताओं ने यह जानने के लिए 'रीडिंग द माइंड इन द आइज के मददेनजर' द आइज टेस्ट' आयोजित किया था। इस टेस्ट का यह निष्कर्ष सामने आया कि मन को पढ़ने की क्षमता क्रोमोसोम 3 की वजह से प्रभावित होती है।

व्यंगात्मक कविता
मैं हूँ भारत का चौराह
(भारतीय का सामाजिक से राष्ट्रीय आतंरिक नकारात्मक का अनुसंधान)
आचार्य कनकनंदी
(चालः-जय हनुमान तुम दिल की सायोनारा)
मैं हूँ चौराहा सब से निराला, सबसे निराला मेरा काम।
मैं हूँ भारत का मोडल/(नमुना), मुझ से भारत को पहचान।।
/(मैं हूँ भारत की पहचान)(स्थायी)
मुझे देखने व जानने से, जान पाओगे सामाजिक काम।
तथाहि राष्ट्रीय-राजनैतिक, प्रशासनिक आदि के काम।।
सब के उपयोगी सब से व्यस्त, होता है मेरा स्वरूप/(काम)।

अतः मेरी व्यवस्था-स्वच्छता, होनी चाहिए तदनुरूप ।। (1)

किंतु इससे पूर्ण विपरीत, अधिक अव्यवस्था-अस्वच्छता।
गंदगी करना तोड-फोड करना, भारतीयों की हैं पहचान।
घर व दुकानों की गंदगी से, मेरी सजावट करते हैं लोग।
थुकना-मुतना-मल त्याग करना, जिससे बढ़े मेरी शान।। (2)

नियम कानून-सूचना-वार्निंग, मेरे हेतु होते सभी बेकार।
यातायात की अव्यवस्था से लेकर, हड़ताल-सभादि से मैं बेकार।।
सार्वजनिक मैं होने से मेरा, मालिक तो हो जाते हैं सभी।
किंतु मेरी सुरक्षा-व्यवस्था हेतु, कोई, न काम करते कभी।। (3)

यदि मेरी सुरक्षा-व्यवस्था हेतु, होता कुछ धन का जुगाड।
उसे भी लोग बन्दरबाट के सम, करते अन्याय पूर्ण जोड-तोड।।
मेरे ही सम सरकारी स्कूल-अस्पताल/(बस-स्टैंड) व रेलवे स्टेशन।
सर्वत्र ही सार्वजनिक क्षेत्र में, होता भारत में अयोग्य काम ।। (4)

मैं तो भारत का छोटा सा दर्पण, या मानचित्र के समान।
मैं साक्षात जीवंत उदाहरण, भारतीयों का चारित्र/(स्वभाव) दिखाता।।
मुझे देखकर/(जानकर) भारतीयों की, सामाजिकता का होता परिज्ञान।
राष्ट्रीय से लेकर स्वच्छता, का होता सही दिग्दर्शन।। (5)
इन की शिक्षा-संस्कृति-परम्परा-आधुनिकता का मैं ज्वलंत रूप।
मेंरी दुर्दशा दूर करने हेतु, 'कनक' ने वर्णन किया मेरा विद्रुप।। (6)
मैं ीाी लेता हूँ बदला इसका, प्रदूषण-रोग-दुर्घटना-मृत्यु से।
तथापि भारतीय न समझ पाते, स्व-अज्ञान व मोह कार्य से।।

स्वच्छता अभियान में धन की कोई कमी नहीं राज्य सरकार में इच्छाशक्ति की कमी
नई दिल्ली। सुप्रीम कोर्ट ने ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को देश की सबसे बड़ी समस्या करार देते हुए कहा है कि 'स्वच्छता भारत मिशन' के तहत धन की कोई कमी नहीं है। लेकिन स्व्च्छता अभियान को लेकर राज्य सरकारें उदासीन हैं और उनमें इच्छाशक्ति की कमी होने के कारण इस दिशा में कोई सकारात्मक पहल नहीं कि जा रही है। सुप्रीम कोट ने सोमवार को केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय की दलीलों को सुनने के बाद यह टिप्पणी की। मंत्रालय ने कहा कि अभियान के तहत कुल 36,829 करोड़ रू का बजट रखा गया है। इसमें से केंन्द्र 7,424 करोड़ रूपया मुहैया करा चुका है। जस्टिस मदन बी लोकुर और जस्टिस दीपक गुप्ता की पीठ ने कहा कि ठोस कचरा प्रबन्धन से जुड़े मुद्दे पर राज्यों को गंभीरता से और खासकर स्वच्छ भारत अभियान के संदर्भ में ध्यान देना चाहिए। पीठ ने मामले में अगली सुनवाई छह फरवरी को तय की है। इससे पहले एडिशन्स सॉलिसिटर जनरल एएनएस नादकर्णी ने पीठ के समक्ष ठोस अपशिष्ट का जिक्र करते हुए कहा कि इसमें राज्य स्तरीय एडवादजरों बोर्ड गठित करने का प्रावधान है, लेकिन राज्य इसे लागू नहीं कर रहे हैं और कुछ राज्यों में तो इस बोर्ड की एक बैठक भी नहीं हुई है।

मेरी स्व-प्रभावना व बाह्य प्रभावना
(स्व प्रभावना से बाह्य प्रभावना स्वतः होती है)
(चालः मन रे! तू काहे)

जिया रे ! तू स्व-प्रभावना कर
स्व-प्रभावना से बाह्य प्रभावना स्व-पर प्रकाशी तू बन (ध्रुव)
जो दीपक स्वयं होता प्रकाशित अन्य भी होते स्वयं प्रकाशित
जो दीपक न होता स्वयं प्रकाशित अन्य को न करता प्रकाशित
आत्मदीप पहले बन रे (जिया)(1)

आत्मा प्रभावना हेतु करो साधना आत्मविश्वास-ज्ञान-चरित्र द्वारा
निस्पृह-निराडम्बर-समता द्वारा ध्यान अध्ययन-तप-त्याग द्वारा
सरल-सहल शांति के द्वारा (जिया)(2)

इससे करो तू आत्म विशुद्धि आत्मा की करो अनुभूति
स्वयं को शुद्ध-बुद्ध-आनंद करो संक्लेश-द्वंद से विमुक्ति
निर्बाध निर्विकार तू बन (जिया)

इससे होगी तेरी आत्मिक शक्ति वृद्धि जिससे होगी आत्मप्रभावना
इस हेतु धनजन आडम्बर न चाहिए पर अपेक्षा-उपेक्षा न प्रतीक्षा
अतः स्व-प्रभावना सरल-सहज (जिया)(4)

स्व-प्रभावना बिन बाहय प्रभावना हेतु चाहिए धन-जन व साधन
इस हेतु होते दबाव-प्रलोभन चंदा व बोली या याचना
इससे होते संक्लेश-विराधना (जिया)(5)

जिससे अप्रभावना अधिक होती स्व-पर को न मिले समता-शांति
इह पर लोक में (भी) न आत्म अन्नति न मिलती परम मुक्ति
'कनक' का लक्ष्य परम मुक्ति (जिया)(6)
ओबरी 16/12/2017 प्रातः 7:00
(चितरी के निस्पृह-निराडम्बर चातुर्मास से प्राप्त शिक्षा से यह कविता बनी

कर्मरूपी राजकी सेवा करता है तो वह कर्मरूप रज भी उसके लिए सुख उपजाने वाले विविध प्रकार के सुख देता है। जिस प्रकार वही पुरूष वृत्ति के निमित्त राजा की सेवा नहीं करता है तो राजा उसके लिए सुख उपजाने वाले विविध प्रकार के भोग नहीं देता है इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव विषयों के लिए कर्मरूपी रज को सेवा नहीं करता है तो वह कमरूपी रज भी उसके लिए सुख उपजानेवाले विविध प्रकार के भोग नहीं देता है। 224-227
संदर्भ :- सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक तथा निर्भय होता
सम्मद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भवा तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका ।। 228।।
सम्यग्दृष्टि जीव चूँकि शंकारहित होते हैं इसलिए निर्भय हैं और चूँकि सप्तभय से रहित है इसलिए शंकारहित हैं।
भावार्थ- निर्भयता और निःशंकपन में परस्पर कार्यकरण भाव है।
निःशंकित अंगका स्वरूप
जो चत्तारिवि पाए, छिंदति ते 'कम्मबंधमोहकरे।
सो णिस्संको चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। 229।।
जो आत्मा कर्मबंध के कारण मोह के करनेवाले उन मिथ्यात्व आदि पापों को काटता है उसे निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना

चाहिए।।
निःकांक्षित अंग का स्वरूप
जो दुण करेदि कंखे, कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा, सम्मदिट्ठी मुणेयव्वो ।। 230।।
जो आत्मा कर्मों के फलों में तथा वस्तु के स्वभावभूत समस्त धर्मों में वांछा नहीं करता है उसे निःकांक्षित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।
जे ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ।।231।।
जो जीव वस्तु के सभी धर्मों में ग्लानि नहीं करता उसे निश्चय से निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।।
अमूढदृष्टि अंग का स्वरूप
समयसार
जो हवई असंमूढो, चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।232।।
जो जीव भावों में मूढ़ नहीं होता हुआ यथार्थ दृष्टिवाला होता है उसे निश्चय से अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।
उपगूहन अंग का लक्षण
जो जिद्धभत्तिजुत्तो, उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगृहणकारी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।233।।
जो सिद्धभक्ति से युक्त हो समस्त धर्मों का उपगृहन करनेवाला हो उसे उपगृहन अंगका धारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।।
स्थितिकरण अंग का लक्षण
उम्मंगं गच्छंतं, संगपि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।234।।
जो जीव न केवल परको किंतु उन्मार्ग में जानने वाले अपने आत्मा को भी समीचीन मार्ग में स्थापित करता है उसे स्थितिकरण अंग से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चहिए।
वात्सलय अंगका स्वरूप
जो कुणदि वच्छलत्तं, तियेह साहूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ।।235।।
जो जीव, आचार्य उपाध्याय तथा साधुरूप मुनियों के त्रिकमें और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग में वत्सलता करता है उसे वात्सल्य भाव से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।
प्रभावना अंगका स्वरूप
विज्जारहमारूढो, मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सौ जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।236।।
जो जीव विद्यारूपी रथपर आरूढ होकर मनरूपी रथ के मार्ग में भ्रमण करता है उसे जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

.

पांच यूनिवर्सिटी की रिसर्च बता रही है कैसे बढ़ती है याददाश्त
सफलता-असफलता बहुत कुछ मैमोरी पर निर्भर करती है। कहा जाता है कि याददाश्त हर तरह की समृद्धि और खुशी का खजाना है। जानते हैं शीर्ष विश्वविद्यालयों की रिसर्च में क्या तरीके बताए गए हैं इस खजाने यानी याददाश्त को बढ़ानने के-
फ्लेशकार्ड का उपयोग
चीजों को याद रखने के लिए फ्लेशकार्ड का इस्तेमाल कीजिए। इससे याददाश्त 50% तक बढ़ाई जा सकती है।
वाशिंगटन यूनिवर्सिटी
एकरूपता से छोड़ना कारगर
ग्रुप में हम ग्रुप की तरह सोचने लगता है। अलग ग्रुप, न्युज चैनल, अखबार देखने से अलग-दृष्टिकोण मिलेंगे, जो याद रहेंगे।
टेक्सास यूनिवर्सिटी

नियमित पैदल चलना जरूरी
नियमित रूप से पैदल चलने से याददाश्त तेज होती है। मस्तिष्क को मेमोरी से जुड़ा हिस्सा इससे मजबूत होता है।
पीटर्सबर्ग यूनिवर्सिटी

बेचैनी से दूर रहना अहम
बेचैनी से मैमोरी बिगड़ती है। परीक्षा और बड़े इवेंट के पहले खुश रहें। भरपूर सोएं सोचे ये काम आसान है
मेसाचुसेट्स यूनिवर्सिटी

10 मिनट का ब्रेक काम का
काम के बीच 10 मिनट का ब्रेक लेने वालों को सूचनाए 20% अधिक याद रहने की संभावना होती है।
एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी

काम के लिए ऊर्जा चाहिए तो ये हैं कारगर उपाय
स्वयं को मोटिवेट और ऊर्जावान बनाए रखने के लिए कुछ तरीके कारगर हो सकते हैँ। इनमें से एक हैं दिन में कुछ पल शांति से बिताना और दूसरा है-साथियों की समस्या के समाधान की पहल करना। हावर्ड बिजनेस रिव्यू में आज जानते हैं इसी के बारे में।

दिन में निकाल सकते हैं, कुछ शांत पल
कुछ अनुसंधानों से पता चला है कि कुछ पल शांत रहने से नर्वस सिस्टम ठीक होता है। ऊर्जा बढ़ती है और दिमाग चीजा को देखने-समझने के लिए अधिक सतर्क बनाता है। यानि दिमाग की ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। इसलिए दिनचर्या में कुछ शांत पल शामिल किए जाने चाहिए। इसके लिए छोटी-सी शुरूआत की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर मीटिंग में पांच मिनट शांत रहने की व्यवस्था कर सकते हैं। या फिर अपने दफ्तर में या पास में किसी पार्क की बेंच पर या कहीं और सुविधा की जगह पर शांत बैठा जा सकता है। कुछ पल के लिए अपने फोन, खबरों, और इंटरटेनमेंट से दूर हो चाना चाहिए। वीकएंड में अकेले लंगी सैर पर जा सकते हैं। इन पलों का पूरा लाभ लेने के लिए ध्यान और चिंतन को अपनाया जा सकता है।

कर्मचारियों को सीधे ग्राहक से जोड़ना बेहतर
किसी को उसके काम का पूरा महत्व समझकर उसे मोटिवेट किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर एक शोध में पता चला है कि जब कोई कुक अपने पकाए भोजन को किसी को खाते हुए देखते हैं तो वो अधिक उत्साह का अनुभव करता है। साथ ही अधिक मेहनत भी करता है। इसी तरह अगर किसी कर्मचारी के काम का नतीजा बहुत अच्छा न हो तो भी अगर उसके काम को विशेष नाम या कहानी दे दी जाए तो उसे बेहतर काम की प्रेरणा मिलेगी। उसे बताया जा सकता है कि कैसे उसके काम से लोगों को फायदा हुआ है। कर्मचारियों को बताया जा सकता है कि कैसे उनके बनाए सॉफ्टवेयर ग्राहको के लिए उपयोगी साबित हो रहे हैं और कैसे असेंबली लाइन में उनके अच्छे काम की वजह से लोग सुरक्षित ड्राइविंग कर पा रहे हैं। उद्देश्य यह है कि कर्मचारी और उसके काम से लाभ ले रहे लोगों के बीच संबंध बनाया जाए।

ग्रेटीट्यूड मेडिटेशन
रोज 60 सेकंड में बढ़ा सकते हैं 25% खुशी
आंखे बंद करे और केवल ख्याल करें कि दिल प्रकाश से भरा है। किसी चमक को देखने का प्रयास न करे, क्योंकि प्रकाश

दिखता नहीं है। फिर किसी ऐसी चीज को याद कीजिए, जिससे ग्रेटीट्यूड यानी आभार की भावना अपने-आप पैदा होती हो। सुबह की ताजी हवा पक्षियों का चहचहाना या पिछले दिन किसी को मदद करके मिली खुशी की याद भी हो सकती है। कल्पना करे की कृतज्ञता आपके दिल से निकलकर दुनिया में फेल रहे हैं पहले दिन शायद इसमें आपको साठ सेकंड से ज्यादा वक्त लग जाए। यह मेडिटेशन आपके पूरे दिन को समृद्धि और दिन में आप तक पहुंचने वाली सकारात्मक बातों के लिए सराहना से भर देगा।
इसका सूत्र है : आप वह नहीं है जो आप करते हैं, आप वह हैं जो आप नियमित रूप से लगातार करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि आप उदास नहीं होंगे दिनभर का काम आपको निचोड़ नहीं डालेगा। लेकिन दिन-प्रतिदिन खुद को बेहतर पाएंगे। सही कृतज्ञता है और साठ सेकंड के ग्रेटीटयूड मेडिटेशन का असर।

अमेरिका हार्ट एसोसिएशन के मुताबिक आभार की भावना से हमें सेहत के ये लाभ मिलते हैं
रक्त में रोगो से लड़ने वाले कण डब्ल्यूबीसी बढ़ाते हैं।
कार्टी सोल जैसे स्ट्रेस हार्मोन 23 फीसदी काम को जाते हैं।
आपके व्यायाम करने की संभावना 36 फीसदी बढ़ती है।
दर्द और मुश्किलों से निपटने की क्षमता बढ़ती है।
आप दूसरो के गुणों और उपलब्धियों की तारीफ करते हैं।
आप 25 फिसदी अधिक प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

हर विधा के विशेष ज्ञान हेतु चाहिए सही गुरू
आचार्य कनकनंदी
(चाल : क्या मिलिए)
बिना गुरू के नहीं होता है, सामान्यजनों को विशेषज्ञान।
सही गुरू से ही होता है, भाषाज्ञान से ले आत्मज्ञान।।
जो शुद्ध भाषा नहीं जानता, वह नहीं सिखा सकता शुद्ध भाषा ज्ञान।
जो संस्कृत नहीं जानता है, वह नहीं सिखा सकता संस्कृत ज्ञान ।। (1)

जिसको जो लिपि नहीं आती है, वह न पढ सकता है वह लिपि।
जिसको वह लिपि ज्ञान होता है, उससे सिख सकते (हैं) लिपि।।
सर्वज्ञ से गणधर ज्ञान पाते, उनसे आचार्यादि पाते ज्ञान।
परम्परा रूप से मौखिक-लिखित, हम पा रहे है वही ज्ञान ।। (2)

सर्वज्ञ भी पहले (गुरू से) ज्ञान प्राप्त कर, साधना से बनते सर्वज्ञ।
सर्वज्ञ से अतिरिक्त सभी ही, सिखते (हैं) अन्य से भी ज्ञान।।
यथा बीज ही बनता है वृक्ष, तथाहि आते वृक्ष में फूल-फल।
किंतु मृदा-जल-वायु के बिना, बीज न बन पाता है अंकुर।। (3)

चक्षु से दृश्यमान वस्तु दिखाई देती, जब होता है सही प्रकाश।
ज्ञान चक्षु से तथा दिखाई देता, जब होते है गुरू-विरोध।।
स्व-मुख सही दर्शन हेतु भी, यथा चाहिए स्वच्छ-समतल दर्पण।
तथाहि स्व-स्वरूप परिज्ञान हेतु, चाहिए-गुरू विलक्षण।। (4)

योग्य वाहक से यथा वाद्ययंत्र से, निकलते विभिन्न मधुर स्वर।
तथाहि सुयोग्य गुरू उपदेश से, प्रकट होते हैं ज्ञान भण्डार।।
तिल से तैल व दूध से घृत, निकलता यथायोग्य घर्षण द्वारा।
तथाहि-सुयोग्य शिष्य में निहित, ज्ञान प्रकट होता योग्य गुरूद्वारा।। (5)

एकाग्रचित्त व पवित्रभाव से, जब गुरू-शिष्य करते अध्ययन।
शिष्य की नम्रता व प्रयत्नशीलता से, शिष्य पाता है गुरू से ज्ञान।।
यथा प्रज्वलित दीपक सम्पर्क से, बुझा हुआ दीपक होता प्रज्वलित।
तथा स्व-पर प्रकाशी गुरू के द्वारा, योग्य शिष्य होता लाभान्वित।। (6)

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम व, ज्ञान-ज्ञानी के योग्य विनय से।
ज्ञान दान व जिज्ञासा वृत्ति से, ज्ञानार्जन होता शीघ्रता से।
हंस, गाय सम सुयोग्य शिष्य, बनते गुरू से ज्ञानवान्।
'कनकनंदी' ने बनाया काव्य, स्व पर-विश्व बने सही ज्ञानवान् ।। (7)

ओबरी 10/12/2017 प्रातः 07:01

आत्म सम्बोधन
तुझ मैं ही तेरा अंतरात्मा व परमात्मा
(भव्य ही बनता है भगवन्)
आचार्य कनकनंदी
(चाल : 1. क्या मिलिए ऐसे लोगों से 2. तुम दिल की)
तुझ में ही समाहित तेरा परमात्मा,
कहाँ ढूँढ रहा है बहिरात्मा।
तिल में तैल दूध में घृत सम, तुझ में ही तेरा अंतः परमात्मा
यथा बीज ही बनता अंकूर से वृक्ष, द्रव्यक्षेत्र-कलादि निमित्त पाक
तथाहि भव्य ही बनते भगवान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादि को पाकर

इस हेतु तुझे भी त्यागना होगा, बहिरात्मा रूपी मोह-राग भाव।
शरीर-सत्ता-सम्पत्ति न तेरा स्वरूप, तू तो सच्चिदानंदमय अमूर्त जीव।।
ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा से बनोगे अंतरात्मा, अष्टमद-सप्तव्यसन-रहित पना।
सच्चे-देव-शास्त्र-गुरू धर्म में आस्था, दान-दया-सेवा-परोपकार सहित।

ज्ञान वैराग्य सहित बनोगे श्रमण, अंतरंग, बहिरंग ग्रंथ त्याग से।
ध्यान-अध्ययन व मनन चिंतन से, विकास होगा तेरा ही अंतरात्मा।।
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व रहित,समता,शांति-निस्पृहता युक्त।
आत्मविशुद्धि आत्म रमण द्वारा, अंतरात्मा से बनोगे परमात्मा।। (3)

परमात्मा में पाओगे शुद्ध-बुद्ध-आनंद, जन्म-जरा-मरण रहित पद
अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य सम्पन्न, इस हेतु ही बना 'कनक' श्रमण।

चितरी 16/12/2017 मध्यात्म 3:00

बहिरन्त : पश्चेति त्रिधात्मा सवदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेतु।।4।।
हो अथवा अभव्य हो, सबमें तीन प्रकार का आत्मा मौजूद है। सर्वज्ञ में भी भूतप्रज्ञापय की अपेक्षा समान बहिरात्मावस्था अन्तरात्मावस्था सिद्ध है।
आत्मा की इन तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धिरूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यकत्व प्राप्त कर उस विरीताभिनिवेशमय बहिरात्मावस्थाको छोड़ना चाहिये और मोक्ष मार्ग की साधक अन्तरात्मावस्था में स्थिर होकर आत्मा की स्वाभाविक वीरागमयी परमात्मावस्थाको व्यक्त करने उपाय करना चाहिये ।। 4।।

बहिरात्मा शरीरादी जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः।।5।।

भावार्थ - आत्मा की तीन अवस्थाएँ होती है - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। उनमें से जब तक प्रत्येक संसारी जीवकी अचेतन पुद्गल-पिंडरूप शरीरादि विनाशीक पदार्थों में आत्म-बुद्धि रहती है, या आत्मा जब तक मिथ्यात्व-अवस्था में रहता है। तब तक वह 'बहिरात्मा' कहलाता है। शरीरादि में आत्मबुद्धि का त्याग एवं मिथ्यात्वका विनाश होने पर जब आत्मा सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसे 'अन्तरात्मा' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं - उत्तम अन्तरात्मा, मध्यम अन्तरात्मा और जघन्य अन्तरात्मा। अन्तरंग-बहिरंग-परिग्रह का त्याग करने वाले, विषयकषायों को जीतने वाले और शुद्ध उपयोग में लीन होने वाले तत्त्वज्ञानी योगीश्वर 'उत्तम अन्तरात्मा' कहलाते हैं, देशव्रत का पालन करने वाले गृहस्थ तथा छुट्टे गुणस्थानवर्ती मुनि 'मध्यम अन्तरात्मा' कहे जाते है और तत्वश्रद्धा के साथ व्रतों को न रखने वाले अविरतसम्यग्दृष्टि जीव 'जघन्य अन्तरात्मा' रूप से निर्दिष्ट हैं।

आत्म गुणों के घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातियाकर्मों का नाश करके आत्मा की अनन्त चतुष्टयरूप शक्तियों को पूर्ण विकसित करने वाले 'परमात्मा' कहलाते हैं। अथवा आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था को 'परमात्मा' कहते हैं। यदि कोई कहे कि अभव्यों में तो एक बहिरात्मावस्था ही संभव है, फिर सर्व प्राणियों में आत्मा के तीन भेद कैसे बन सकते हैं ? यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अभव्य जीवों में अन्तरात्मावस्था और परमात्मावस्था शक्ति रूप से जरूर है, परन्तु उक्त दोनों अवस्थाओं व्यक्त होने की उनमें योग्यता नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो अभव्यों में केवल ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध व्यर्थ ठहरेगा। इसलिये चाहे निकट भव्य हो, दूरान्दूर भव्य हो अथवा अभव्य हो, सबमें तीन प्रकार का आत्मा मौजूद है। सर्वत्र में भी भूतप्रज्ञापनयकी अपेक्षा घूत-घटके समान बहिरात्मावस्था और अन्तरात्मावस्था सिद्ध है।
आत्मा की इन तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धिरूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यकत्व प्राप्त कर उस विपरीताभिनिशमय बहिंरात्मावस्था को छोड़ना चाहिये और मोक्ष मार्ग की साधक अन्तरात्मावस्थाय में स्थिर होकर आत्मा की स्वाभाविक वीतरागमयी परमात्मावस्था को व्यक्त करने का उपाय करना चाहिये।।4।।
'बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः।।5।।
भावार्थ - मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत तत्वों का जैसा स्वरूप जिनेन्द्र देव ने बताया है उसको वैसा न मानने वाला बहिरात्मा अथवा मिथ्यादृष्टि कहलाता है। दर्शन मोह के उदय से जीव में अजीवकी कल्पना और अजीब में जीव की कल्पना होती है, दुखदाई रागद्वेषादिक विभाव भावों को सुख-दाई समझ लिया जाता है, आत्मा के हितकारी ज्ञान वेराग्यादि पदार्थों को अहितकारी जानकर उनमें अरूचि अथवा द्वेषरूप प्रवृत्ति होती है और कर्मबंध के शुभाशुभ फलों में राग, द्वेष होने से उन्हें अच्छे बुरे मान लिया जाता है। साथ ही इच्छाएँ बलवती होती जाती है, विषयों की चाह रूप दावानल में जीव दान-रात जलता रहता है। इसीलिये आत्मशक्ति खो देता है और आकुलता रहित मोक्ष सुख के खोजने अथवा प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इस प्रकार जातितत्व और पर्यायतत्त्वों को यथार्थ परिज्ञान न रखने वाला जीव मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। चैतन्य लक्षणवला जीव है, इससे विपरीत लक्षण वाला अजीब है, आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, अमूर्तिक है और य शरीरादिक पर द्रव्य है, पुद्गल के पिंड हैं, विनाशोक है, जड़ है, मेरे नहीं है और न मैं इनका हूँ, ऐसा भेदविज्ञान करने वाला सम्यग्दृष्टि 'अन्तरात्मा' कहलाता है। अत्यन्त विशुद्ध आत्मा को 'परमात्मा' कहते हैं, परमात्मा के दो भेद हैं- एक सकलपरमात्मा दूसरा निष्कलपरमात्मा। जो चार घातिया कर्ममल से रहित होकर अनन्तज्ञानादि चतुष्टयरूप अन्तरंगलक्ष्मी समवसरणादिरूप बाह्यलक्ष्मी को प्राप्त हुआ हैं उन सर्वज्ञवीतराग परमहितोपदेशी आत्माओं को 'संकलपरमात्मा' या 'अरहन्त' कहते हैं। और जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मलों का नाश कर दिया है, जो लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, निजानन्द निर्भर-निजरसका पान किया करते हैं तथा अनन्तकाल तक आत्मोत्य स्वाधीन निराकुल सुख का अनुभव करते हैं उन कृतकृत्यों को 'निष्कलपरमात्मा' या 'सिद्ध' कहते हैं ।। 5।।
निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।।6।।

भावार्थ- मोह के उदय से बुद्धि का विपरीत परिणमन होता है। इसी कारण बहिरात्मा इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण में आने वाले बाह्य मूर्तिक पदार्थों ही अपने मानते है। उसे अभ्यन्तर आत्मतत्त्व को कुछ भी ज्ञान या प्रतिभास नहीं होता है। जिस प्रकार धतूरेका पान करने वाले पुरूष को सब पदार्थ पीले मालूम पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार मोहके उदय से उन्मत्त हुए जीवों को अचेतन शरीरादि पर पदार्थ भी चेतन और स्वकीय जान पड़ते हैं। इसी दृष्टिविकार से आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान नहीं हो पाता और इसलिये यह जीवात्मा शरीर की उत्पत्ति से अपनी उत्पत्ति और शरीर के विनाश से अपना विनाश समझता है।।7।।
नरदेहस्थमात्मानमविद्वान मन्यते नरम्।
तिर्यञ्च तिर्यगजूगस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा ।। 8।।
नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनंतानंतधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः ।।9।।
टीका नरस्य देहो नरदेहः तत्र तिष्ठतीति नरदेहस्थस्तमात्मार्न नरं मन्यते।
कौऽसी ? अविद्वान् बहिरात्मा। तिर्थचमात्मानं मन्यते। कथंभूतं ? विर्यगङ्गस्थं
1. ''सुरं त्रिदशपर्यायैर्नु पर्यायैस्तथा नरम्।
तिर्यचं च तदङ्गे स्व नारकाङ्गे च नारकम्।। 32।।
वेत्त्यविद्यापरिश्रान्तो मूढस्तन्न पुनस्तथा।
किन्त्वमूर्त स्वसंवेद्यंतद्रपं परिकीर्तितम् ।।14।।''
भावार्थ- यह अज्ञानी आत्मा कर्मादय से होने वाली नरनारकादि पर्यायों को ही अपनी सच्ची अवस्था मानता है। उसे ऐसा भेदविज्ञान नहीं होता कि मेरा स्वरूप इन दृश्यमान पर्यायों से सर्वथा भिन्न है। भले ही इन पर्यायों में यह मनुष्य है, यह पशु है इत्यादि व्यवहार होता है, परन्तु ये सब अवस्थाएँ कर्मोदयजन्य है, जड़ हैं और आत्मा का वास्तविक स्वरूप इनसे भिन्न कर्मापाधिसे रहित शुद्ध चैतन्यमय टंकोत्कीर्ण एक ता द्रष्टा है, अभेद्य है, अनन्तानन्तशक्ति को लिये हुए है, ऐसा विवेक ज्ञान उसको नहीं होता। इसी कारण संसार के परपदार्थों में व मनुष्यादि पर्यायों में अहंबुद्धि करता है, उनको आत्मा मानता है और सांसारिक विषय सामग्रियों के संचय करने एवं उनके उपभोग करने में ही लगा रहता है। साथ ही, उनके संयोग-वियोग में हर्ष-विवाद करता रहता है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव भेद-विज्ञानी होता है, वह इन पर्यायों की कर्मोदयजन्य मानता है और आत्मा के चैतन्यस्वरूप का निरन्तर अनुभव करता रहता है तथा पर पदार्थों को अपनी आत्मा से भिन्न जड़रूप ही निश्चय करता है। इसी कारण पंचेन्द्रियों के विषयों में उसे गृद्धता नहीं होती और न वह इष्टवियोग-अनिष्टसंयागादि में दुखी हो होता है इसलिये आत्महितैषियों को चाहिये कि बहिरात्मावस्था को अत्यन्त हेय समझकर छोड़ें और सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा होकर समीचीन मोक्षमार्ग का साधन करें।। 8-9।।

मेरा आत्मविकास का पैमाना
आचार्य कनकनंदी
(चाल : क्या मिलिए सायोनारा)
मेरा आत्मविकास का पैमाना, मेरे द्वारा ही मैं जानूँ।

जितने अंश में बढे समता-शांति, उतने अंश में मै मानूँ।।
समता से बढती है शांति, शांति से बढ़ती है समता।
दोनों से बढ़ती आत्मविशुद्धि, आत्मविशुद्धि से शांति-समता।। (1)

इससे बढ़ती आत्मिक शक्ति, जिससे बढ़ती समता-शांति।
इससे बढ़ती बंधनमुक्ति, यह ही मेरी आत्म-उन्नति।।
इस हेतु करूँ मैं आत्मविश्वास, तथाहि आत्मा का परिज्ञान।
मैं सच्चिदानंद अमूर्त द्रव्य, ऐसा करूँ मैं श्रद्धान-ज्ञान।। (2)

इस हेतु (ही)करूँ मैं ध्यान-अध्ययन, मनन-चितंक व तप त्याग।
आकर्षण-विकर्षण व द्वंद्व त्यागूँ, तथाहि संकल्प-विकल्प-संक्लेश।।
इस हेतु ख्याति पूजा लाभ त्यागूँ, धन-जन-मान व वर्चस्व।
अपना-पराया भेद भाव त्यागूँ, धनी-गरीब व ऊँच-नीच ।।(3)

इस हेतु त्यागूँ क्रोध-मान-माया-लोभ,ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा-मोह।
पर निंदा-अपमान वैर-विरौध, पर प्रतिस्पर्धा व नकलची भाव।।
स्व मूल्यांकन स्वयं ही करूँ, स्व आध्यात्मिक विकास से।
स्व-आध्यात्मिक प्रेम स्वयं का करूँ, स्व-आध्यात्मिक गुणों से।। (4)

स्वयं का पतन मैं स्वयं न करूँ, न करूँ स्वयं का अपमान।
स्व गुण निंदा मैं स्वयं न करूँ, स्व विकास हेतु करूँ प्रोत्साहन।।
स्वयं को सम्बोधन स्वयं मैं करूँ, स्व विकास का करूँ मैं अभिनंदन।
स्व अनुभव मैं स्वयं ही करूँ, स्व-गुणों का करूँ मैं आह्वानन।। (5)

अज्ञानी मोही स्वार्थी जनों से, मेरा विकास है विपरीत-अज्ञ।
इन से 'कनक' अप्रभावी होकर, आत्मविकास हेतु करे सतत् प्रयत्न।।
ओबरी 16/12/2017 रात्रि 08.00

दर्पण के सामने लिये गए उद्गार काफी फायदेमंद होते हैं, क्योंकि आपको अपने अस्तित्व का सच ज्ञात होता है। जब आप उद्गार करने के शीघ्र बाद ऐसे नकारात्मक प्रत्युत्तर सुनते हैं - ''तुम किससे बचकानी बातें कर रहे हो? यह सत्य नहीं हो सकता। तुझ इस लायक नहीं हो।'' तब आपको अपने प्रयोग के लिए एक उपहार हासिल हो चुका है। आप जिस परिवर्तन की चाह रखते हैं, वह आपको तब तक हासिल नहीं होता, जब तक आप यह जानने के प्रति इच्छुक नहीं रहते कि ऐसा क्या है, जिसने आपको रोके रखा है।
अभी आपके जिस नकारात्मक प्रत्युत्तर की प्राप्ति हुई है, वह आपके स्वतंत्रता की कुंजी बन जाता है। उस नकारात्मक प्रत्युत्तर को ऐसे सकारात्मक उद्गार में बदल दीजिए, जैसे - ''अब मैं सभी अच्छी चीजों के लायक हूँ। मैं अच्छे अनुभवों की भरमार अपनी जिंदगी में चाहता हूँ।'' इन नए उद्गारों को तब तक दोहराते रहिए, जब तक कि ये आपके जीवन के हिस्से नहीं बन जाते।
मैंने उन परिवारों की भी काफी परिवर्तित होते देखा है, जहाँ केवल एक व्यक्ति ही ऐसे उद्गार करता है। 'हेराइड द ' में आने वाले बहुत से लोग ऐसे हैं, जो टूटे व बिखरे परिवारों से आते हैं। उनके माता-पिता की उनसे बात भी नहीं होती है। मैंने उनसे ऐसे उद्गार व्यक्त कराए हैं- ''मेरी अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ स्नेहिल, जोरदार और खुलकर बातें होती हैं।''या उस खास व्यक्ति से, जिससे उन्हें परेशानी होती है। जब हर समय वह व्यक्ति या परिवार दिमाग में छाया रहता है, तब मैं उन्हें दर्पण के सामने जाकर बार-बार ऐसे उद्गारों को व्यक्त करने के लिए कहती हूँ। बड़ा आश्चर्य होता है, तीन या छह या नौ महीनों के बाद वे माता-पिता भी मीटिंग में नजर आते हैं।

अंततः, अब स्वयं को प्रेम कीजिए
स्वयं से असंतुष्टि एक आदत है। जब यदि आप स्वयं से संतुष्ट नहीं है, यदि आप अब स्वयं से प्रेम कर सकती हैं या स्वयं को स्वीकार कर सकते हैं तो जब खुशी आपके जीवन में आएगी तो आप उसका आनंद ले सकेंगे। जब आप स्वयं प्रेम करना सीख जाते हैं, तब दूसरों से भी प्रेम कर सकते हैं और उन्हें स्वीकार सकते हैं।
हम दृसरे लोगों को तो नहीं बदल सकते, इसलिए उन्हें उनके हाल पर छोड़। हम दूसरों को बदलने के प्रयास में अपनी बहुत सी ऊर्जा व्यय कर देते हैं गोद हम उसकी आधी-ऊर्जा भी स्वयं करते तो स्वयं की बदल सकते थे। और जब हम स्वयं में बदलाव से आते हैं तो हमारे प्रति दूसरों का नजरिया बदल जाता है।
आप किसी दूसरे व्यक्ति के लिए जीवन-दर्शन नहीं सीख सकते। हर किसी का अपना अध्याय स्वयं सीखना पड़ता है। आप यहां कर सकते हैं कि इसे स्वयं सीखें और इस दिशा में पहला कदम है- स्वयं को प्रेम करना। अतः आप किसी दूसरे व्यक्ति के विध्वंसक बरतावों से नीचे नहीं गिर सकते। फिर आप सचमुच किसी ऐसे नकारात्मक सोच वाले व्यक्ति के साथ है, जो बदलना ही नहीं चाहता तो स्वयं को इतना प्रेम कीजिए कि आप उसकी नकारात्मक से दूर हो जाएँ।
सुरक्षित और खुश महसूस करेगा ते वह आपका भरोसा कर सकता है। उससे पूछिए, '' मैं ऐसा क्या करूँ, जिससे तुम मेरा विश्वास कर सके?'' यहाँ भी आपको जो उत्तर मिलेगा, उससे आप विस्मित रह जाएँगे।

मैं जानती हूँ, प्रेम हर व्यथा व कष्ट को मिटा देता है। प्रेम गहनतम सर्वाधिक दर्दनाक यादें भी मिटा देता हैं, क्योंकि प्रेम किसी और चीज की अधिक गहराई में प्रवेश कर जाता है। यदि आप में अतीत की मानसिक काफी मजबूत हैं और आप दूसरों को दोष देते रहते हैं तो आप इसी में रह जाते हैं। आप दुःख दर्द का जीवन चाहते हैं या सुख और खुशहाली क्या पसंद और शक्ति आपके भीतर ही मौजूद है। अपनी आँखों में झाँकिए और से तथा अपने भीतर के बच्चे से प्यार कीजिए।

मौजूद हैं। वह आपसे शर्तहीन प्रेम करता है। वैसा ही प्रेम आप स्वयं से कीजिए। इस बात से रोमाचिंत हो उठिए कि आप जीवित हैं और आप यहाँ मौजूद हैं। आप स्वयं वह व्यक्ति हैं, जिसके साथ आप जीवन भर रहेंगे। जब तक आप अपने भीतर के बच्चे से प्रेम नहीं करेंगे, तब तक आप किसी से प्रेम नहीं कर सकते। स्वयं को निःशर्त व खुले मन से स्वीकार कीजिए।

मैं जानती हूँ प्रेम हर व्यथा व कष्ट को मिटा देता हैं। प्रेम गहनतम और सर्वाधिक दर्दनाक यादें भी मिटा देता है, क्योंकि प्रेम किसी और चीज की अपेक्षा अधिक गहराई में प्रवेश कर जाता है। यदि आप में अतीत की मानसिक छवियाँ काफी मजबूत हैं और आप दूसरों को दोष देते रहते हैं तो आप इसी में फँस कर रह जाते हैं। आप दुःख-दर्द का जीवन चाहते हैं या सुख और खुशीहाली का? पसंद और शक्ति आपके भीतर ही मौजूद है। अपनी आँखों में झाँकिए और स्वयं से तथा अपने भीतर के बच्चे से प्यार कीजिए।(जीत का जश्न)

उजाले की ओर
कभी-कभी यह जानना काफी नहीं होता कि चीजों का वास्तव में अर्थ क्या हैं बल्कि कमी-कमी तो आपको यही जानने की आवश्यकता होती है कि चीजों का अर्थ क्या नहीं है।
बॉब डिलन (साहित्य में नोबेल 2016)

जीवन के मध्य में मृत्यु आपका नाप लेने के लिए आती है। उसकी यह यात्रा भुला दी जाती है और जीवन चलता रहता है लेकिन, सूट की सिलाई रहस्यमय तरीके से शुरू हो जाती है।

(टॉमस ट्रांसस्टोमर, (साहित्य में नोबेल 2010)

दमन की भाषा हिसां व्यक्त से कुछ अधिक करती हैः यह हिंसा ही है। यह ज्ञान की सीमाओं का प्रतिनिधित्व करने से अधिक कुछ है, यह ज्ञान को ही सीमित कर देती है।
(टॉनी मौरिसन (साहित्य में नोबेल, 1993)

हम जितनी कल्पना करते है दुष्टता उससे भी अधिक कमजोर है। सबूत हमारे सामने है यदि ऐसा नहीं होता तो खूंखार जानवरों और विषेलें कीड़ों, प्राकृतिक अपदाओं भयं-अहंकार के बावजूद मानव समूह फलते-फूलते नहीं।
नगीब महाफूज (साहित्य का नोबल 1988)

यह सच नहीं है कि बूढ़े होने के कारण लोग सपनों का पीछा छोड़ देते हैं बल्कि सच तो यह हैं कि वे बूढे ही इसलिए हो जाते हैं, क्योंकि सपनों का पीछा छोड़ देते है।
गैब्रियल गार्सिया मार्खेज (साहित्य का नोबेल)

जीवन के लिए उपयोगी काम करना, साहसी बातें करना, सुंदर चीजों पर सोच-विचार करना किसी व्यक्ति की जिंदगी के लिए इतना काफी है।
टीएस एलियट, (साहित्य में नोबेल)

यदि आप किसी व्यक्ति से नफरत करते है तो उस व्यक्ति में मौजूद किसी ऐसी चीज से आपको नफरत है, जो आपके व्यक्तिवत्त्व का हिस्सा है। जो हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं होता, वह हमें विचलित नहीं करता।
हर्मन हेसे, (साहित्य का नोबेल 1946)

सत्य कोई रंगबिरंगा पक्षी नहीं है, जिसका चट्टानों में पीछा करके उसकी पूछ से उसे पकड़ लिया जाए बल्कि यह तो जिदंगी के प्रति संदेहभरा रवैया है।
सिनक्लेयर लेविस(साहित्य का नोबेल 1948)

ज्ञान उचित और संपूर्ण अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है फिर शुरूआती बिंदु कोई भी क्यों न हो। केवल यह मालूम होना चाहिए कि 'सीखें' कैसे। हमारे सबसे नजदीक तो मानव ही है और आप खुद सारे मानवों में अपने सबसे नजदीक हैं। अपने अध्ययन से शुरूआत करो।
- जॉर्ज गुरजिएफ, आर्मेनिया के दार्शनिक

हमारे व्यक्तित्व में मौजूद यांत्रिकता से धीरे-धीरे मुक्त होकर ही हमारी चेतना जागृत हो सकती है। क्योंकि आदमी यांत्रिक नियमों से बंधा है। हम सोचते भी मशीन की तरह हैं। आप कई चीजों के बारे में यांत्रिक तरीके से सोच सकते हैं पर इससे आपको मिलेगा कुछ भी नहीं।
पीडी ऑस्पेंस्की, रूसी दार्शनिक

जब हम किसी दुस्वप्न में भय के सर्वोच्च क्षण पर पहुंचते हैं तो जाग जाते हैं और वे सारे डरावने आकार गायब हो जाते हैं। जीवन भी सपना है। जब इसमें खौफनाक क्षण आता है तो वही होता है-हम चेतना के स्तर पर जाग जाते हैं।
ऑर्थर शापनहावर, जर्मन दार्शनिक

जब तक आप अपने अचेतन को चेतन नहीं बनाते वह आपके जीवन को संचालित करता रहेगा और आप इसे भाग्य कहेंगे। आपका विजन तभी स्पष्ट होगा जब आप भीतर देखेंगे। जो बाहर देखता है वह सपना जीता है, जो भीतर देखता है वह जागृत होता है।
कार्ल जुंग, स्विस मनोचिकित्सक

हर व्यक्ति के भीतर कोई दिव्यता होती है - पूर्णता और शक्ति प्राप्त करने का एक अवसर, जो ईश्वर हमें देता है। इसे चाहे तो हम स्वीकार करें या ठुकराएं। हमारा काम है इसे खोजना, विकसित करना और उपयोग करना।
महर्षि अरविंद, क्रांतिकारी व दार्शनिक

यदि आपकी राय से अलग राय आपको गुस्सा दिलाती है तो वह बताता है कि अवचेतन स्तर पर आपको पाता है कि आप जिस तरह सोचते हैं उसका कोई कारण आपके पास नहीं हैं। शास्त्रों में आपको सजा के प्रावधान मिलेंगे, गणित में नहीं, क्योंकि पहली सिर्फ राय है और दूसरा ज्ञान।
बर्ट्रेंड रसेल, ब्रिटिश दार्शनिक

अमरीकी यूनिवर्सिटी का शोध स्वार्थी व भावहीन होते हैं ज्यादा कमाने वाले
कैलिफोर्निया पत्रिका एक स्टडी के मुताबिक जो लोग ज्यादा पैसे कमाते हैं या जिनकी सैलरी बहुत ज्यादा होती है वो लोग स्वार्थी बन जाते हैं। और जो लोग सामान्य पैसे कमाते हैं या जिनकी सैलरी भी सामान्य होती है उनका व्यवहार ज्यादा सैलरी वालों की तुलना में ठीक होता है। अमरीका की यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के पॉल पिफ के बताया कि रिसर्च रिजल्ट को देखें तो ये सामने आया है जो लोग ज्यादा पैसा कमाते हैं वो खुश नहीं होते पैसों से खुशी नहीं खरीदी जा सकती, 1,519 लोगों पर ये रिसर्च की गई है। इनसे सवाल पूछे गए सवालों में सामने आया कि अधिक सैलरी वालों के व्यवहार में दिखावा ज्यादा था।

सीमित इनकम में सकारात्मकता
स्टडी की मानें तो कम सैलरी वाले लोग रिश्ते भी मजबूती से निभाते हैं और लोगों के साथ उनकी अच्छी बैठती है। जिनकी इनकम सामान्य होती है उनका व्यवहार लोगों के प्रति काफी अच्छा और ज्यादा इमोशनल रहता है। स्टडी के अनुसार अधिक पैसा आपको अलग तरह की खुशी देता है, जबकि सीमित इनकम सकारात्मकता

समता परमो धर्मः (समता में समस्त आध्यात्मिक धर्म गर्भित है!
(समता बिन सभी धर्म अधर्म।(कुधर्म)
आचार्य कनकनंदी
(चाल : आत्मशक्ति)
मोह-क्षोभ से रहित होने से होती है समता परम
सभी तीर्थंकरों ने ऐसा ही कहा।(किया) यह ही परम धर्म।।
मोह के कारण न होती है, जीवों का सही श्रद्धान।
अंधश्रद्धान से जो होता ज्ञान वह होता मिथ्याज्ञान।। (1)

क्रोध-मान-माया-लोभ-कामादि से, होता है क्षोभ उत्पन्न।
जिससे जीवों में होता संक्लेश, जिससे भाव मलीन।।
मोह-क्षोभ के ही अनेक भेद हैं, ईर्ष्या-तृष्णा व घृणा।
पंचपाप-सप्त व्यसन अष्टमद, व सप्तभय अशुभ लेश्या।। (2)

इन सब कारणों से ही होता हैं, आकर्षण व विकर्षण।
अपना-पराया भेद-भाव व ऊँच-नीच पक्षपात-विषम।।

संकल्प-विकल्प व द्वंद के कारण, भाव होता है अस्थिर।।
जिससे श्रद्धा-प्रज्ञा भी दूषित,लक्ष्य न होता सुस्थिर।।(3)

जिससे निर्णय न सही होता, साधना न होती सम्यक्।
समता-शांति व शुचिता बिन, सभी साधना असम्यक्।।
समता में ही गर्भित होते हैं, रत्नत्रय व दशधा धर्म।
द्वादश अनुप्रेक्षा व तप, सोलहकारण (भावना) षटावश्यककर्म।। (4)

तीन ज्ञानधारी दो कल्याणक युक्त, पंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर।
इस परम समता को प्राप्त न कर पाते, जब तक न बनते मुनीश्वर।।
इस परम समता हेतु ही वे त्याग करते हैं दोनों परिग्रह।
मनः पर्यय व चौषट ऋद्धि धारी, होकर (भी) करते मौन-ध्यान।।(5)

ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित, करते समता की साधना।
परोपदेश व वर्चस्व रहित, करते वे आत्मा की प्रभावना।।
आदेश-निर्देश व पर निंदा, अपमान रहित (हो) करते साधना।
मान-अपमान व शत्रुता-मित्रता, परे करते समता की साधना।।(6)

मुनि अवस्था में धर्म प्रभावना, हेतु भी न करते कोई काम।
मंदिर-मूर्ति-धर्मशाला निर्माण, शिक्षा-दीक्षादि काम।।
समता हेतु ही साधना करते, जिससे बढ़ती जाती आत्मविशुद्धि।
जिससे अनंत चतुष्टय प्राप्ति से, खिरती है दिव्यध्वनि।।(7)

शतइंद्र से सेवित होकर भी, रहते न परम समता धारी।
समवशरण के भौतिक वैभव से भी रहते वे अविकारी।।
अंत में वे सिद्ध बनते तब भी होते परमसाम्यधारी।
ऐसी परम समता प्राप्ति के हेतु ही साधनारत 'कनक' सूरी।।(8)
चितरी 11/12/2017 रात्रि 08:05
(धर्म में हो रही विषमता से शिक्षा लेकर यह कविता बनी। विशेष परिज्ञान हेतु सत्य साम्य सुखामृतम् (प्रवचनसार) का अध्ययन करे।)

जिसमें सत्य, धर्म, अंहिसा, संयम और दम है वही विगतमल, धीरे कहा जाता है।
यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता ही पापनं समणो ति पवच्चति।।(10)
जो छोटे-बड़े पापों को सर्वथा शमन करने वाला है, पाप को शामिल होने के कारण वह श्रमण कहा जाता है।
योध पुञ्ञञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरिय वा।
संखाय लोके चरति स वे भिक्खू ति वुच्चति।। (12)
जो यहाँ पुण्य और पाप को छोड़ ब्रह्मचारी बन ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है। नारायण श्री कृष्ण ने भी संयमी को ही प्रज्ञावान, स्थितप्रज्ञ स्थिर बुद्धि वाला कहा है। यथा-
प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।(55) गीत पृ. 36

पार्थ! जब मनुष्य मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।(56)
दुःख से जो दुःखी न हो, सुख की इच्छा न रखे और जो राग, भय और क्रोध से रहित हो वह स्थिर बुद्धि मुनि कहलाता है।
य सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राय शुभाशुभम्।
नाभिनन्दित न द्वेष्टि तस्य प्रतिष्ठिता।।(57)
सर्वत्र रागरहित, होकर जो पुरूष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(58)
कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है तैसे जब यह पुरूष इन्द्रियों का उनके विषय में से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है।
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते।।(59)
देहधारी निराहारी रहता है तब उसके विषय मंद पड़ जाते हैं। परंतु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से निवृत होता है।
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(61)
इन सब इन्द्रियों को वश में रखकर योगी को मुझमें तन्मय हो रहना चाहिए, क्योंकि अपनी इन्द्रियाँ जिसके वश में है उसकी बुद्धि स्थिर है।
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावायतः शांतिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।(66)
जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं उसके भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है और जहाँ शांति नहीं, वहाँ सुख कहाँ से हो सकता है?
इन्द्रियाणां हि चरता चन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।(67)
विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है, उसका मन वायु जैसे नौका को जल से खींच ले जाता है वेसे ही उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे खींच ले जाता है।
सदा सर्व में साम्यभाव रखने वाला श्रमण है
समसत्तबंधुवग्गो समसुहदुक्खा पसंसणिदसमो।
समलोट्ठकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणे।। (241) प्र.सार
Enemies and the members of the family, happiness and misery, praise and censure, a clod of earth and (A lump of gold, and even life and death are alike to the Sramana).

आगे आगम का ज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान, संयमीपना इन तीन विकल्परूप लक्षण से एक साथ युक्त तथा निर्विकल्प आत्मज्ञान से युक्त जो कोई संयमी होता है उसका क्या लक्षण है ऐसा उपदेश करते हैं यहाँ ''इति उपदेश करते है'' इसका यह भाव लेना कि शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं इस तरह प्रश्नोत्तर को दिखाने के लिए कहीं कहीं यथासंभव इतिशब्द का अर्थ लेना योग्य है- (समसत्तुबंधुवग्गो) जो शत्रु व मि समुदाय में समान बुद्धि का धारी है, (समसुहदुक्खो) जो सुख-दुःख में समान भाव रखता है, (पसंसणिंदसमो) जो अपनी प्रशंसा व निंदा में समता भाव करता है (समलोट्ठकंचणो) जो कंकड़ और सुवर्ण को समान समझता है, (पुण) तथा (जीविदमरणे समो) जो जीवन तथा मरण को एक सा जानता है, वही (समणो) श्रमण या

साधु है।
शत्रु, बंधु, सुख, दुःख, निन्दा, प्रशंसा, लोष्ठ, कंचन तथा जीवन-मरण।। समता की भावना में परिणमन करते हुए अपने ही शुद्धात्मा का सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण रूप जो निर्विकिल्प समाधि उससे उत्पन्न निर्विकार परम आह्लाद रूप एक लक्षण धारी सुख रूपी अमृत में परिणमन स्वरूप जो परम समता भाव सो ही उस तपस्वी का लक्षण है जो परमागम का ज्ञान, तत्वार्थ का श्रद्धान संयमपना इन तीनो को एक साथ रखता हुआ निर्विकल्प आत्मज्ञान में परिणमन कर रहा है ऐसा जानना चाहिए।

संयम सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक चारित्र है, चारित्र धर्म है, धर्म साम्य है, साम्य मोह क्षोभ रहित आत्म परिणाम है। इसलिए संयत का साम्य लक्षण है।
वहाँ, (1) शत्रु-बंधु वर्ग में, (2) सुख-दुःख में, (3) प्रशंसा-निंदा में, (4) कंकड़ और सोने में, (5) जीवन-मरण में एक ही साथ, (1) यह मेरा पर (शत्रु है), यह स्व (स्वजन है), (2) यह आह्लाद है यह परिताप है, (3) यह मेरा उत्कर्ष बढ़वारी है यह आकर्षण घटती है, (4) यह मुझे अकिंत्कर है, यह उपकारक है, (5) यह मेरा स्थायित्व है, यह अत्यंत विनाश है, इस प्रकार मोह के अभाव के कारण सर्वत्र जिसके रागद्वेष का द्वेत प्रगट नहीं होता, जो सतत्-विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव आत्मा का अनुभव करता है और (इस प्रकार) शत्रु-बंधु, प्रशंसा और निंदा, लोष्टकांचन और जीवन-मरण को, निर्विशेषतया ही (बिना अंतर के) ज्ञेयरूप से ज्ञानकार ज्ञानात्मक आत्मा में जिसकी परिणति अचलित हुई है, उस पुरूष को वास्तव में जो सर्वतः साम्य है सो साम्य संयत का लक्षण समझना चाहिए उस संयत के आगमज्ञान-तत्वर्थश्रद्धान-संयतत्व की युगपता के साथ आत्मज्ञान की युगपत्ता है।
समीक्षा - यह गाथा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस गाथा में समता की परिभाषा तथा श्रमण की परिभाषा दी गई है। जो समताधारी होगा वह श्रमण होगा, जो श्रमण होगा वह समतधारी होगा। समता जीव का स्व-शुद्ध स्वरूप होने के कारण यह समता ही चारित्र है, रत्नत्रय है, धर्म है, मोक्षमार्ग है तथा मोक्ष भी है। क्योंकि जीव की साम्यावस्था ही समता है, सामयिक है और वह अवस्था संकल्प-विकल्प, आकर्षण-विकर्षण, मोह-क्षोभ, राग-द्वेष, इन्द्रिय जनित सुख-दुःख से रहित परम समरसी भाव स्वरूप है। मिथ्यात्व अवस्था में पूर्ण वैभाविक भाव होने के कारण साम्य भाव हो ही नहीं सकता है। भले मंद कषाय के कारण शुभ लेश्या के कारण मिथ्यादृष्टि दिगम्बर मुनि बनकर घोर-उपसर्ग परिषेह को झलता हो। इससे भले ही वह नौ ग्रैवेयेक में उत्पन्न हो जाए। सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी के चतुष्क के यथायोगय उपशम, क्षय, क्षयोपशम से जितने अंश में आत्मा में निर्मलता आती है, संकल्प-विकल्प दूर होता है, राग-द्वेष दूर होता है उतने अंश में समता अवश्य आती है परन्तु यह करणानुयोग की अपेक्षा है परन्तु चरणानुयोग की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र न होने के कारण वहाँ समता या सामयिक को स्वीकार नहीं किया गया है। पंचम गुणस्थान के शिक्षाव्रत में सामायिक को स्वीकार किया गया है। श्रावक सामयिक पंचम गुणस्थान के शिक्षाव्रत में सामायिक को स्वीकार किया गया है। श्रावक सामयिक में समस्त आरंभ-परिग्रह त्याग करता हुआ यथायोग्य शीत-उष्ण, सुख-दुःख को समता भाव से सहन करता हुआ पंच परमेष्ठी का ध्यान या आत्मा भावना करता है। समंतभद्र स्वामी ने ऐसे श्रावक को वस्त्रों से वेष्टित मुनि के समान कहा है। यथा-
एकान्ते सामायिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया।। (9) पृ. 182, र. श्रा.
सह सामयिक निर्मल बुद्धि के धारक श्रावक के द्वारा स्त्री, पुरूष तथा नपुंसकों से रहित प्रदेश में चित्त में चंचलता उत्पन्न करने वाले कारणों से रहित स्थान में, वनों में, मकानों में अथवा मंदिरों में भी बढ़ाने के योग्य है।
व्यापार वैमनस्याद्विर्निवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्याम्।
सामायिक बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा।। (10)
शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता अथवा कलुषता से निवृत्ति होने पर मानसिक विकल्पों की विशिष्ट निवृत्तिपूर्वक उपवास के दिन अथवा एकाशन के दिन और अन्य समय भी सामयिक करना चाहिए।
सामायिंक प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपंचकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन।।(11)
आलस्य से रहित और चित्त की एकाग्रता से युक्त पुष्प के द्वारा हिंसा त्याग आदि पाँच व्रतों की पूर्ति के कारण सामायिक प्रतिदिन भी योग्यता के अनुसार बढ़ाने के योग्य है।
सामायिक सारम्भाः परिग्रह नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं।।(12)
क्योंकि सामायिक के काल में आरंभ सहित सभी परिग्रह नहीं ही है इसलिए इस समय गृहस्थ उपसर्ग के कारण वस्त्र से वेष्टित मुनि के समान मुनिपने को प्राप्त होता है।
सामायिक को स्वीकृत करने वाले गृहस्थ स्थिर समाधि अथवा ग्रहित अनुष्ठाः। को न छोड़ते हुए मौनधारी होकर शीत, उष्ण तथा दंशमशक परिषद को और उपसर्ग को भी सहन करें।
वह सामायिक संपूर्ण मूलगुण और उत्तरगुण को बढ़ाने वाला है, आत्मा को परिशुद्ध करने वाला है, कषायों, संकल्प-विकल्प, तनाव को दूर करने वाला होता है। इसलिए अधिक से अधिक श्रावकों को भी सामयिक करने की प्रेरणा दी है। आधुनिक शोध के अनुसार भी सिद्ध हो गया है कि तनाव से, विषमता से अधिकांश मानसिक रोग होता है। जिससे अधिकांश शारीरिक रोग भी होते हैं। इसलिए तनाव को दूर करने के लिए शारीरिक शिथिलीकरण के साथ मानसिक शिथिलीकरण, पवित्रता, भाव परिस्कार, योग, ध्यान आदि को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इससे शारीरिक मानसिक रोग होने के साथ-साथ आध्यात्मिक रोग स्वरूप द्रव्य कर्म, भाव कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिससे जीव को परम स्वास्थ रूप मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है इसका विशेष वर्णन मैंने मेरी ''धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान'' में किया है। विशेष जिज्ञासु वहाँ से अवलोकन करें।
श्रावक अवस्था में श्रावक समता का अभ्यास करता-करता जब राग-द्वेष-मोह को अधिक शिथिलीकरण कर लेता तब वह श्रमण बन जाता है। श्रमण का साम्यभाव ही साम्य है, समता भाव है। जब मुमुक्षु श्रमण बनता है तब समस्त सावध का परित्याग स्वरूप सामायिक चारित्र को स्वीकार करता है। जब इसमें स्थिरता नहीं रहती है तब छेदोपस्थापना चारित्र या विकलप स्वरूप 28 मूलगुणों को धारण, पालन करता है। यह सामायिक चारित्र ही बढ़ता-बढ़ता परमयथाख्यात चारित्र रूप में परिणमन करता है।
श्रावक तो तीन संध्या में सामायिक का अभ्यास करता है परन्तु श्रमण सतत् सामायिक रूप में रहता है। जो साधु के लिए तीन संध्या में सामायिक का विधान है वह सामायिक को और वृद्धि करने के लिए तथा आत्मा में स्थिरता धारण करने के लिए है। यदि साधु तीन समय में सामायिक करता है और अन्य समय में समता भाव में नहीं रहता है तब वस्तुतः वह साधु श्रमण नहीं है। क्योंकि ''समो समणो'' या संयतस्य ''साम्य लक्षणं'' अर्थात् साम्य ही श्रमण है तथा संयत का लक्षण साम्य भाव है। कुंदकुद देव ने नियमसार में कहा भी है -
संजमणियमतवेण दु, धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स।। (123) पृ. 343
संयम, नियम ओर तप से तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान से आत्मा को ध्याता है, उस साधु की परम समाधि होती है।
किं काहदि् वणवासों, कायमिलेसो विचित्र उपवासो।
अज्झयणमौणपहुदी, समदारहियस्स समणस्स।। (124)
वन में निवास, काया का क्लेश, अनेक विविध उपवास तथा अध्ययन, मौन आदि कार्य, समता से रहित श्रमण के लिए क्या करेंगे ?
विरदो सव्वसावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स समाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।। (125)
जो संपूर्ण सावद्य रोग से विरत, तीन गुप्ति से सहित, और इन्द्रियों को संवृत्त करने वाले हैं, उनके स्थायी सामायिक है, ऐसा केवली भगवान् के शासन में कहा है।
जो समो सव्वभूदेसु, थावरेरसु, थावगेरसु तसेसु वा।
तस्य सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणो।। (126)
जो स्थावर और त्रस जीवों के प्रति, समस्वभावी हैं, उसके सामायिक स्थायी हैं, ऐसा केवली भगवान के शासन में कहा है।
जस्स सण्णिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइग ठाई, इदि केवलिसासणे।। (127)
जिसकी आत्मा संयम में, नियम में और तप में निकट है उसके सामायिक व्रत स्थायी है, ऐसा केवली भगवान् के शासन में

कहा है।

जस्स रागो दु दोसो दु, विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे। (128)

जिनके राग और द्वेष विकृति को उत्पन्न नहीं करते हैं उनके सामायिक व्रत स्थायी है, ऐसा भगवान् केवली के शासन में कहा है।

जो दु अंट्ट च रूद्दं च, झाणं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स समाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।। (129)

जो आर्त तथा रौद्र ध्यान को नित्य ही छोड़ देते हैं, उनके सामायिक स्थायी है ऐसा केवली भगवान् के शासन में कहा है।

जो दु हस्सं रई सोगं, अरदिं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।। (131)
जो दुगंछा भयं वेदं, सव्वं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।। (132)

जो हास्य, रति शोक और अरति को नित्य ही छोड़ देता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली भगवान् के शासन में कहा है। जो जगुप्सा, भय और सभी वेद को नित्य ही छोड़ देता है, उसके सामायिक व्रत स्थायी है, ऐसा केवली भगवान् के शासन में कहा है।

जो दु धम्मं च सुक्कं चं, झाणं झाएदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।। (133)

जो साधु धर्म और शुक्ल ध्यान को नित्य ही ध्याता है उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा भगवान् केवली के शासन में कहा गया है।

जब सम्यक् दर्शन की उपलब्धि हो जाती है तब वस्तु स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तथा जब राग-द्वेष क्षीण होता जाता है जब विषमता भी क्षीण होती जाती है। जब अंतरंग में इस प्रकार निर्मल समरसी भाव आ जाता है तब उसका प्रभाव बाह्य जगत् में भी पड़ता है इसलिए वह बाह्य द्रव्यों से प्रभावित नहीं होता है। अतः उसके लिए न कोई शत्रु रहता है और न ही कोई मित्र होता है न कोई अपना रहता है न कोई पराया रहता है। उसके लिए न तो कोई बाह्य लाभ स्वरूप है और न ही कोई बाह्य हानि स्वरूप है। वह तो समस्त विषयों से तटस्थ, प्रज्ञ, औदासीन्य, वीतरागी-वीतद्वेषी, साम्यभावी बन जाता है। जिस प्रकार नदी के तीर में बैठा हुआ व्यक्ति नदी के स्रोत से न बहता है न ही नदी के जलचर हिंस्र पशु उसे क्षति भी पहुँच सकते हैं। पूज्यवाद स्वामी ने कहा भी है-

क्षीयन्तेंऽत्रैव रागाद्यस्तत्त्वतां मां प्रपाश्चतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न में शत्रुर्न च प्रियः।। (25) स.त.पू. 34

जब तक यह जीव अपने निजानन्दमयी स्वाभाविक निराकुलता रूप सुधामृत का पान नहीं करता तब तक ही वह बाह्य पदार्थों को भ्रम से इष्ट अनिष्ट मानकर उनके संयोग-वियोग के लिए सदा चिंतित रहता है। जो उस संयोग-वियोग के साधक होते हैं उन्हें अपना शत्रु-मित्र मान लेता है, किन्तु जब आत्मा प्रबुद्ध होकर यथार्थ वस्तुस्थिति का अनुभव करने लगता है तब रागद्वेषादिरूप विभाव परिणति मिट जाती है और इसलिए बाह्य सामग्री के साधक-बाधक कारणों में उसके शत्रु-मित्र का भाव नहीं रहता तो उस समय अपने ज्ञानानन्दस्वरूप में मग्न रहना ही सर्वोपरि समझता है।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शर्त्रुन च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं, लोको न मे शर्त्रुन च प्रियः।। (26)

आत्मज्ञानी विचारता है कि शत्रु-मित्र की कल्पना परिचित व्यक्ति में ही होती है अपरिचित व्यक्ति में नहीं। ये संसार के बेचारे अज्ञप्राणी जो मुझे देखते जानते ही नहीं मेरा आत्मस्वरूप जिनके चर्मचक्षुओं के अगोचर हैं वे मेरे विषय में शत्रु-मित्र की कल्पना कैसे कर सकते हैं और जो मेरे स्वरूप को जानते हैं - वे मेरे शुद्धात्म स्वरूप का साक्षात् अनुभव करते हैं वे मेरे शत्रु व मित्र कैसे बन सकते हैं ? इस प्रकार अज्ञ व विज्ञ दोनों ही प्रकार के जीव मेरे शत्रु या मित्र नहीं हैं।

अचेतनमिदंदृश्यमदृश्यंचेतनं ततः।
क्करूष्यामि तुष्यामि मध्यस्थोऽह भावाम्यतः।।

अंतरआत्मा को अपने अनाद्यन्त अविद्यारूप भ्रांत संस्कारों पर विजय प्राप्त करने के लिए सदा ही यह विचार करते रहना चाहिए कि जिन पदार्थों को मैं इन्द्रियों के द्वारा देख सकता हूँ वे सब तो जड़ हैं चेतना से रहित है उन पर रोष करना व्यर्थ है- वे उसे कुछ समझ नहीं सकते और जो चैतन्य पदार्थ हैं वे दिखाई नहीं पड़ते वे मेरे रोगतोष का विषय हो ही नहीं सकते। अतः मुझे किसी से राग-द्वेष न रखकर मध्यस्थ भाव का ही अवलम्बन कर लेना चाहिए। महात्मा बुद्ध ने भी समता का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निंदापसंसासु न सामिञन्ति पण्डिता।। (6) धम्मपद पृ. 27

जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता वैसे ही पंडित निंदा और प्रशंसा से नहीं डिगते।

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति न काम कामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन पुट्ठा अथवा दुखेन न अच्चावचं पंडित दस्सर्यति।। (8)

सत्पुरूष सभी (छंद-राग आदि) को त्याग देते हैं वे काम-भोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुःख विकार नहीं प्रदर्शन करते।

मा पियोहि समागच्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुख्खं अप्पिनानंच दस्सनं।। (2) पृ. 68

प्रियों का संग न करे और न कभी अप्रियों का प्रियों को न देखना दुःखद है और अप्रियों का देखना।

वाहितपापेति ब्रह्मणो समचरिया समणोति बुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बोजित्तोति वुच्चति।। (6) पृ. 122

जिसने पाप को धोकर बहा दिया है वह ब्राह्मण है जो समता का आचरण करता है वह श्रमण है, (चूँकि) उसने अपने (चित्त) मलों को हटा दिया इसलिए वह प्रव्रजित कहा जाता है।

समता को हर तीर्थकर ने अधिक महत्त्व दिया है। इसलिए तो बीच के 22 तीर्थकरों ने मात्र सामायिक चारित्र का ही शिष्यों के लिए प्रतिपादन किया था। क्योंकि सामायिक में ही समस्त मूलगुण-उत्तरगुण चारित्र रवत्रय, दसलक्षण, धर्म बाईस परिषह जग गर्भित हैं। इस सामायिक से ही तत्व की उपलब्धि, बोधि लाभ, मोक्ष लाभ होता है। इसलिए अमृतचंद्र सूरि ने श्रावकों के लिए भी सामायिक अधिक से अधिक करने के लिए प्रेरित किया है। यथा-

रागद्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य।
तत्तवोपलब्धिमूल बहुशः सामायिकं कार्य।। (48) (पु.सि.पृ. 176)

समस्त सोना-चाँदी और तृणादिक तथा शत्रु, मित्र, महल, श्मशान आदि द्रव्यों में राग-द्वेष का त्याग कर देने से समताभाव धारण करके तत्त्व प्राप्ति कर मूल कारणभूत सामायिक अधिक रूप से करना चाहिए।

सम् उपसर्ग पूर्वक गति (जाना) अर्थ वाली इण् धातु से समय बनता है। सम का अर्थ एकीभाव है, अय का अर्थ गमन है, जो एकीभाव रूप से गमन किया जाये उसे समय कहते हैं उसका जो भाव है उसे सामायिक कहते हैं। अर्थात् जो आत्मा को समस्त मन, वचन, काय की इतर वृत्तियों से रोककर निश्चित एक ध्येय की ओर लगा दिया जाता है वही सामयिक कहलाता है।

विपरीत परिस्थिति में, समस्या में, परीक्षा की घड़ी में जो विचलित हो जाता है वह प्रगति नहीं कर सकता है। उसमें दृढ़ता नहीं आ सकती है, अनुभव नहीं कर सकता है, ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता है। जिस प्रकार अशुद्ध सुवर्ण को अग्नि से तपाने पर उसकी अशुद्धता निकल जाती है उसी प्रकार जो सुख-दुख, अनुकूल-प्रतिकूल, लाभ-अलाभ रूप अग्नि से तपता है तब वह शुद्ध हो जाता है परिपक्व हो जाता है। इसलिए विषमता से भयभीत नहीं होना चाहिए, पलायन नहीं करना चाहिए। उस समय अधिक से अधिक समता रखना चाहिए आत्मा का ध्यान रखना चाहिए। कहा भी है-

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःख्सन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मान भावयेन्मुनिः।। (102) स.पृ. 112

जो भेद विज्ञान दुःखों की भावना से रहित है- उपार्जन के लिए कुछ कष्ट उठाए बिना ही सहज सुकुमार उपाय द्वारा बन जाता है वह परिषह उपसर्गादिक दुःखों के उपस्थित होने पर नष्ट हो जाता है। इसलिए अंतरआत्मा योगी को अपनी शक्ति के अनुसार

दुःखों के साथ आत्मा की शरीरादि से भिन्न भावना करनी चाहिए।
उत्तराअध्ययन में समता का सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार से किया है-
चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्सभिक्खुणो।
पियं न विज्जई किंची अप्पियं पि न विज्जाए।। (15) पृ. 75
पुत्र और पत्नी और गृह व्यापार से युक्त भिक्षु के लिए न कोई वस्तु प्रिय होती है और न कोई अप्रिय-
पंचमहव्वयजुत्तो पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भिन्तर-बहिरओ तवोकम्मंसि उज्जुओ।। (88) पृ. 198
पंच महाव्रतों से युक्त, पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, आभ्यंतर और बाह्य तप में उद्यत-
निम्ममोनिरहंकारेनिस्संगोचरत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य।। (89)
ममत्वरहित, अहंकार रहित, संगरहित, गौरव का त्यागी, त्रस तथा स्थावर सभी जीवों में समदृष्टि-
लाभालाभेसुहेदुक्खेजीविएमरणेतहा।
समो निन्दा पसंसासु तहा माणावमाणओ।। (90)
लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुःख में, जीवन में, मरण में, निन्दा में, प्रशंसा में और मान अपमान में समत्व का साधक-
गारवेसु कसाएसु दण्ड-सल्ल-भएसु य।
नियतो हास सोगाओ अनियाणो अबन्धणो।। (91)
गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य,भय, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बंधन से मुक्त-
अणिस्सिओ इहं लोए परलोए अणिस्सिओ।
वासीचन्दणकप्पो य असणे अणसणे तहा।। (92)
इस लोक और परलोक में अनासक्त, वसूले से काटने अथवा चंदन लगाए जाने पर भी तथा आहार मिलने और न मिलने सम-
एव नाणेण चरणेण दसणेण तवेण य।
भावणाहि य सुद्धाहिं सम्मं भावेत्तु अप्पयं।। (94)
इस प्रकार ज्ञान, चारित्र, दर्शन, तप और शुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को सम्यक्तया भावित कर-
वियाणिया दुक्खविवद्धण धणं ममत्तबंधं च महब्भयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं धारेह निव्वागुणावहं महं।। (98)
धन को दुःखवर्धक तथा ममत्वबंधन को महाभयंकर जानकर निर्वाण के गुणों को प्राप्त करने वाली, सुखावह अनंत सुख प्रापक, अनुत्तर धर्मधुरा का धारण करो।
जहित्तु संगं च महाकिलेसं महन्तमोहं कसिणं भयावहं।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा वयाणि सीलाणि परिसहेय।। पृ. 218
दीक्षित होने पर महाक्लेशकारी, महामोह और पूर्ण भयकारी संग (आसक्ति) का परित्याग करके पर्याय धर्म साधुता में, व्रत में, शल में और परिषहों में परिषहों का समभाव से सहन करने में अभिरूचि रखे।
सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकम्पी खन्तिक्खमे संजय बम्भयारी।
सावज्जाजोगं परिवज्जयन्तो चरिज्जभिक्खू सुसमाहिइन्दिए।। (13) पृ. 219
इन्द्रियों को सम्यक् संवरण करने वाला भिक्षु सब जीवों के प्रति करूणाशील रहे, क्षमा से दुर्वचनादि को सहन करने वाला हो, संयत हो, ब्रह्मचारी हो। वह सदैव सावद्ययोग का पापाचार का परित्याग करता हुआ विचरण करे।
कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु।। (14)
साधु समयानुसार अपने बलाबल को, अपनी शक्ति को जानकर राष्ट्रों में विचरण करे। सिंह की भाँति भयोत्पादक शब्द सुनकर भी संत्रस्त न हो। असभ्य वचन सुनकर भी बदले में असभ्य वचन न कहे।
उवेहमाणो उ परिव्वज्जा विषयमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा य यावि पूयं गरहं च संजए।। (15)
संयमी प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ विचरण करे। प्रिय-अप्रिय अर्थात अनुकूल-प्रतिकूल सब परिषहों को सहन करे। सर्वत्र सबकी (जो भी अच्छी चीज देखे या सुने, उनकी) अभिलाषा न करे, पूजा और गहां भी न चाहे।
कर्मयोगी नारायण कृष्ण ने भी समता योग (साम्य भाव) का वर्णन गीता में निम्न प्रकार से किया है-
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्वैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्धन्द्धो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगाक्षेम आत्मवान ।। (45) पू. 34
हे अर्जुन! जो तीन गुण वेद के विषय है, उनसे तू अलिप्त रह। सुख-दुःखादि द्धंछों से मुक्त हो। नित्य सत्य वस्तु में स्थिर रहा किसी वस्तु को पाने और संभालने के झंझट से मुक्त रह। आत्म परायण हो।
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयंतः शान्तिशान्तस्य कुतः सुखम्।। (66) पृ. 38
जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं उसे भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है और जहाँ शांति नहीं है वहाँ सुख कहाँ से हो सकता है ?
ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुख बन्धात्प्रमुच्यते।। (3) पृ. 63
जो मनुष्य द्वेष नहीं करता और इच्छा नहीं करता, उसे नित्य सन्यासी जानना चाहिए। जो सुख-दुःखादि द्वंद्व से मुक्त है, वह सहज में बंधनों से छूट जाता है।
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वेपाके च पंण्डिताः समदर्शिनः।। (18) पृ. 67
विद्वान और विनयवान ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में कुत्ते में और कुत्तों को खाने वाले मनुष्य में ज्ञानी समदृष्टि रखते हैं।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एंव च।
निर्ममो निरहंकारः समुदुःखसुखः क्षमी।। (13) पृ. 124
सतुष्टःसततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स से प्रियः।। (14)
जो प्राणी मात्र के प्रति द्वेषरहित, सबका मित्र, दयावान, ममतारहित, अहंकार रहित,सुख-दुःख में समान, क्षमावान् सदा संतोषी, योगयुक्त, इन्द्रिय निग्रही और दृढ़ निश्चै है और मुझमें जिसने अपनी बुद्धि और मन अर्पण कर दिया है, ऐसा मेरा भक्त प्रिय है।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकोन्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च से प्रियः ।। (15)
जिससे लोग उद्वेग नहीं हो पाते, जो लोगों से उद्वेग नहीं पाता, जो हर्ष, क्रोध,ईर्ष्या, भय, उद्वेग से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है।
अनपेक्षः शुचिर्दश उदासीनो गतव्ययः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। (16)
जो इच्छा रहित है, पवित्र है, दक्ष (सावधान) है,तटस्थ चिंता रहित है संकल्प मात्र का जिसने त्याग किया है वह मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है।
यो न ह्वष्यति न द्वष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स से प्रियः ।। (17)
जिसे हर्ष नहीं होता, जो द्वेष नहीं करता, जो चिंता नहीं करता, जो आशा नहीं बाँधता, जो शुभाशुभ का त्याग करने वाला है , वह भक्ति परायण मुझे प्रिय है।
समःशत्रो व मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुख-दुःखेषु समः संगविवर्जितः।।(18)
तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी संतुष्टौ येन केनचिंत्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। (19)
शुत्र-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख इन सबमें जो समतावान है जिसने आसक्ति छोड़ दी है, जो निन्दा और स्तुति में समान भाव से बर्तता है और मौन धारण करता है, चाहे जो मिले उससे उसे संतोष हैं, जिसका कोई अपना निजी स्थान नहीं है जो स्थिर चित्त वाला है, ऐसा मुनि भक्त मुझें प्रिय है।

मैं जनता-मानता-लिखता-कहता हूँ
ऐसा आचार्य आदि क्यों कहते हैं!
आचार्य कनकनंदी
चालः1. आत्मशक्ति 2. तुम दिल की 3. सायोनारा
मैं जानता हूँ मैं मानता हूँ मैं लिखता हूँ व मैं कहता हूँ
ये सभी प्रवृत्ति गणधर से लेकर आचार्य तक में पाता हूँ
ये सभी नहीं है अहंकार या अनर्थकथन या वागाडम्बर
ये सभी हैं आत्मश्रद्धान सह अनुभवात्मक भाव-व्यवहार (1)

सत्य को जानना व आत्मा को मानना नहीं होता है मिथ्याचार
आत्मानुभव कर व उसको लिखना या उसे कहना नहीं अहंकार
इससे भिन्न जो माना जाता है वह होता है अन्ध श्रद्धान
इससे भिन्न जो जाना जाता है वह होता है घोर अज्ञान (2)

इससे युक्त जो लिखे जाते हैं वे सभी हैं मिथ्या लेखन
इससे युक्त जो कहे जाते हैं वे सभी हैं मिथ्या कथन
इससे युक्त जो होते हैं वे होती अज्ञानी-मोही व दम्भी
उनके सब भाव-काम-कथन होते अज्ञान-मोह-दम्भपूर्ण (3)

ज्ञानी-वैरागी आचार्य-गणधर आदि से अज्ञानी मोही होते विपरीत
ज्ञानी-वैरागी तो आध्यात्मिक होते अज्ञानी मोही शरीराश्रित/(भौतिक)
ज्ञानी-वैरागी स्व-शुद्धात्मा को ही स्वयं का सर्वस्व मानते
आत्मा का ज्ञान आत्म श्रद्धान उसका कथन-लेखन करते (4)

इनसे विपरीत अज्ञानी-मोही तन/(धन-जन) को ही स्व-स्वरूप मानते
उसका ज्ञान-विश्वास-कथन-लेखन-अर्जन-संरक्षणादि करते
गणधरादि गृहस्थ सम्बन्धी स्व-माता-पितादि के नामादि नहीं कहते
किन्तु स्वदीक्षा-शिक्षा गुरू व शिष्य ग्रन्थादि के बारे में कहते (5)

अन्य उन्हें लगेगा दर्शन-ज्ञान-चारित्र विनय आदि के दोष
जिससे उन्हें बन्धेगा ज्ञानावरणीय-मोहनीय आदि पाप

आचार्य कुन्दुकुन्द कहते हैं ''दाएहं अप्पणो सविहवेण''
''जं भणियं कुन्दकुन्द मुणिणाहे'' ऐसा ही कहे अन्य श्रमण (6)

''सुदं मे आउस्संदो'' ऐसा गौतम गणधर ने ग्रन्थ में लिखा
''णेमिचंद मुणिणा भणियं जं'' द्रव्य संग्रह में ऐसा ही लिखा
यह है आत्म प्रत्यक्ष जो होता अनुभव से उत्पन्न
इससे अतिरिक्त अन्य सभी पर प्रत्यक्ष जो (होता) अन्य के आधीन (7)

यह है आगम स्वस्थ परम्परा जिसका मैं करता हूँ निर्वाह
अनेक साधु से ले भक्त-शिष्य तक इसे मानते हैं अहंकार
स्तुति-प्रार्थना-वन्दना-पूजा-विनय आदि का भी यह स्वरूप
इसके सविस्तार परिज्ञान हेतु निम्न में 'कनक' ने किया उद्धृत (8)

ओबरी, दि. 19/12/2017, रात्रि 9.00

देशयामि समीचीनं धर्म कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो घरत्युत्तमे सुखे ।। (2) आ मन्तभद्र
जो जीव को संसार के दुःखों से निकाल कर उत्तम सुख में
जो जीव को संसार के दुःखों से निकाल कर उत्तम सुख में
धरता है, उस कर्मों के नाशक समीचीन धर्म को मैं कहता हूँ।

श्रुतेन लिंगेन ययात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमानमथाभिधास्ये ।। (3) आ. पूज्यवाद
परमात्मा को नमस्कार करने के पश्चात, अब में आगम से,
अनुमान व हेतु के द्वारा अपने चित्त को स्थिर करके अच्छी तरह
जानकर शुद्ध आत्म सुख के इच्छुक जीवों के लिए शुद्ध आत्म तत्व को अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा।

यः परात्मा स एवाडहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ।। (3)
जो परमात्मा हैं वही मैं हूँ, जो (स्वानुभवगम्य) मैं हूँ वही
परमात्मा है, इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपासना किये जाने योग्य
हूँ, दूसरा कोई मेरा उपास्य नहीं हैं। इस प्रकार आराध्य और आराधक की व्यवस्था हैं।

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ।। (53)
उस आत्म स्वरूप का कथन करें, उस आत्म स्वरूप के विषय में ही ज्ञानियों से पूछें, उस आत्म स्वरूप की इच्छा करे, उस आत्म भावना में आदर भाव धारण करें जिससे यह अज्ञानमय बहिरात्मा छूटकर परमात्मा स्वरूप की प्राप्ति होवें।

णमिदूण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार ।। (1)
मैं परमात्मा (तीर्थकर) वर्द्धमान जिन को मन वचन काय की
त्रिशुद्धि पूर्वक नमस्कार करके सागर (गृहस्थ) और अनागर (साधु) धर्म का व्याख्यान करने वाला रयणसार कहता हूँ।।

पुव्वं जिणेहि भणियं, जहट्ठियं गणहरेहि वित्थरियं।
पुव्वाइरियवक्मजं, तं बोल्लइ जो हु सद्दिठी।। (2)

जो निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, (वह) काल में जिनेन्दों ने जो कहा है, गणधरों ने उसी सत्य को विस्तार रूप से बताया है और कहा है, गणधरों ने उसी सत्य को विस्तार रूप से बताया है और कहा है, गणधरों ने उसी सत्य को विस्तार रूप से बताया है और पूर्वाचार्यों की परंपरा से जो प्राप्त हुआ, उसी को कहता हूँ।

गंथमिणं जिणदिटढं ण हु मण्णादि ण सुणेदि ण हु पढाई।
ण हु चिंतदि ण हु भावदि सो चेव हवेदि कुट्ठि।। (66)
जिनेंद्र देव द्वारा कथित इस ग्रंथ को जो न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिंतन करता है और न ही भावना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

इदि सज्जणपुज्जं रयणसारं गंथं णितलसो णिच्चं।
जो पढ़दि सुणदि भावादि पावदि सो सासयं ठाणं ।। (167)
इस प्रकार सज्जनों के द्वारा पूज्य 'रयणसार' ग्रंथ को जो व्यक्ति आलस्य रहित होकर सदा पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है, वह शाश्वत् स्थान (मोक्ष), पाता है।

दव्वं संगहमिणं मुणिणाहा, दोस्त संचय चुदा सुदापुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंद मुणिणा भणियं जं।। (58)
अल्प ज्ञानी मुझ नेमीचंद मुनि ने जो यह द्रव्य संग्रह कहा है, इसको रागादि तथा संरायोदि दोष रहित द्रव्य श्रुत तथा भाव श्रुत के ज्ञाता प्रधानमुनि संशोधन करें।

सोऊण तच्चसारं रइयं मुणिणाह देवसेणेण।
जो सद्दिट्ठी भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं ।। (74)
जो सम्यग्दृष्टि मुनिनाथ देवसेन के द्वारा रचित इस तत्वसार को सुनकर उसकी भावना करेगा, वह शाश्वत् सुख को पायेगा।

सोमच्छलेण रइया पयत्था लक्खणकराउ गाहाओ।
भत्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचदेण ।।(25)
श्री सोमश्रेष्ठी निमित्त, भव्य जीवों के उपकारार्थ श्री नेमीचंद्र
आचार्य देव ने पदार्थों का लक्षण बताने वाली ये गाथाएं रची है।

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो, णाण दंसण लक्खणो।
सद्धयत्तमुणादेयं, एवं चिंतेइ संजदो।। (20)
मैं एक हूँ, ममता रहित हूँ और ज्ञानदर्शन स्वभावी हूँ। एक मात्र शुद्धात्म स्वरूप ही मेरे लिये उपादेय हैं, इस प्रकार संयमी को सदा चिंतवन करना चाहिए।

शुद्धात्मानं परं ज्ञात्वा ज्ञानरूपं निरञजनम्।
वक्ष्ये संक्षेपतो योमं संसारच्छेदकारणम् ।। (1)
मैं उत्कृष्ट, ज्ञान स्वरूप तथा कर्म कलंक से रहित शुद्धात्मा को जानकर संक्षेप से उस योग ध्यान को कहूँगा जो संसारच्छेद का कारण है।

पणमिय सुरसेणणुयं मुणिगणहरवंदियं महावीरं
वोच्छामि भावसंग्रह मिणमो भव्वप्पवोहट्ट।। (1) (भाव संग्रह)
जो महावीर स्वामी आचार्य श्री देवसेन के द्वार वन्दनीय है तथा मुनि और गणधर देवों के द्वारा वन्दनीय है ऐसे श्री महावीर स्वामी को नमस्कार कर मैं (आचार्य श्री देवसेन) भव्यजीवों को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए इस भाव संग्रह ग्रंथ की रचना करता हूँ।

एण सत्तपयारा जिणदिठ्ठा भासिया मए तच्च
सद्दहइ जो हु जीवो सम्माइट्ठी हवे सो हु।। (348)
इस प्रकार भगवान जिनेंद्रदेव के कहे हुए सात तत्त्वों का
स्वरूप अत्यंत संक्षेप में मैंने कहा। जो जीव इन सातों तत्त्वों का
श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टि पुरूष है।

अविरय सम्मादिठ्ठी एसो उत्तो मया समासेण।
एत्तो उड्ढं वोच्छं समासदो देस विरदो य ।। (349)
इस प्रकार मैंने अत्यंत संक्षेप से अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के चौथे गुणस्थान का स्वरूप कहा। अब इससे आगे संक्षेप से ही देश विरथ अथवा विरताविरत नाम के पाँचवें गुणस्थान का स्वरूप कहते हैं।

पंचमयं गुणठाणं एयं कहियं मया समासेण।
एत्तो उड्ढं वोच्छं पमत्तविरयं तु छमयं।। (599)
इस प्रकार मैंने अत्यंत संक्षेप से पाँचवे गुणस्थान का स्वरूप कहा। अब इस के आगे प्रमत्तविरत नाम के छठे गुणस्थान का स्वरूप कहता हूँ।
जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णेसिं भावं संगहं सुत्तं।
सहणइ णियय कम्मं कमेण सिद्धालयं जाइ।। (700)
इस प्रकार कहे हुए इस भाव संग्रह के सूत्रों को जो पढ़ता है सुनता है अथवा अन्य भव्यजीवों को सुनाता है वह पुरूष अनुक्रम से अपने कर्मों को नाश कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है।
सिरिविमलेसेण गणहर सिस्सो णामेण देवसेणात्ति।
अवुह जण वोहणत्यं तेणेयं विरइयं सुत्त।। (701)
श्री विमलसेन गणधर वा आचार्य के शिष्य श्री देवसेन आचार्य ने अज्ञानी लोगों को समझाने के लिए इस भावसंग्रह सूत्र की रचना की है।

समणमुहुववादमट्ट, चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं। (आ. कुन्दकुन्द)
एसो पणमिय सिरसा, समयमिमं सुणह वोच्छामि।। (2)
जो सर्वज्ञ-वीतराग देव के प्रकट हुआ है, चारों गतियों का निवारण करने वाला है और निर्वाण का कारण है, उस जीवादि पदार्थ समूह को अथवा अर्थ समयसार को शिरसे नमस्कार कर मैं इस पंचास्तिकायरूप समयसार को कहूँगा। हे भव्यजन! उसे तुम सुनो।

मग्गप्पभावणट्ठं, पवयणभात्तप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं, पंचत्थियसंग्रह सुत्तं।। (173)
जिसमें द्वादशांगका रहस्य निहित है ऐसा यह पंचास्तिकायों का संग्रह करने वाला संक्षिप्त शास्त्र मैंने जिनवाणी की भक्ति से प्रेरित होकर मोक्षमार्ग की प्रभावना के लिए ही कहा है।

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते। आ. कुन्दकुन्द
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं।। (1)
मैं ध्रुव, अचल अथवा निर्मल और अनुपम गति को प्राप्त हुए समस्त सिद्धों को नमस्कार कर हे भव्यजीवो! श्रुत केवलियों के

द्वारा कहे हुए इस समयप्राभुत नामक ग्रंथ को कहूँगा।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण
जदि दाएज्ज पमाणं, चुक्किज्ज छलं ण घेत्तत्वं।। (5)

मैं अपने निजविभव से उस एकत्व विभक्त आत्मा का दर्शन कराता हूँ। यदि दर्शन करा सकूँ उसका उल्लेख करा सकूँ तो प्रमाण मानना और कहीं चूक जाऊँ तो मेरा छल नहीं ग्रहण करना।

जह णवि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा ण गाहेउं
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसण मसक्कं।। (8)
जिस प्रकार म्लेच्छजन म्लेच्छ भाषा के बिना वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिए शक्य नहीं हैं, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश शक्य नहीं है।

णमिऊण जिणं वीरं, अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं, केवलिसुदकेवलीभणिदं।। (1)
अनंत और उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन स्वभाव से युक्त श्री महावीर जिनेंद्र को नमस्कार कर मैं केवली और श्रुतकेवली द्वारा कहे हुए नियमसार को कहूँगा।

ईसाभावेण पुणो, केई णिंदति सुंदरं मग्गं।
तोसिं वयणं सोच्चा भत्तिं मा कुणह जिणमग्गे।। (186)
और कितने ही लोग ईर्ष्याभाव से सुंदर मार्ग की निंदा करते हैं, इसलिए उनके वचन सुनकर जिनमार्ग में अभक्ति अश्रद्धा न करो।

णियभावणाणिमितं, मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं, पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं।। (187)
मैंने पूर्वापर दोष से रहित जिनोपदेश को जानकर निज
भावना के निमित्त, यह नियमसार नाम का शास्त्र रचा हैं।

काउण णमुक्कारं, जिणवरवसहस्स वड्डमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि, जहाकमं समासेण।।
मैं आघ जिनेंद्र श्री ऋषभदेव तथा अंतिम जिनेंद्र श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार कर क्रमानुसार संक्षेप से सम्यग्दर्शन के मार्ग को कहुँगा।

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो, णाणदंसणलक्खणो।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतइ संजदो।।
मैं अकेला हूँ, ममत्व से रहित हूँ, शुद्ध हूँ तथा ज्ञान दर्शन रूप लक्षण से युक्त हूँ इसलिए शुद्ध एकत्वभाव ही उपादेय है-ग्रहण करने के योग्य है। इस प्रकार संयमी साधु को सदा विचार करते रहना चाहिए।

इदि णिच्छयववहारं, जं भणियं कुंदकुंदमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो, सो पावइ परमणिव्वाणं।। (91)
इस प्रकार कुंदकुंद मुनिराज ने निश्चय और व्यवहार का आलंबन लेकर जो कहा है, शुद्ध हृदय होकर जो उसकी भावना करता है वह परम निर्वाण को प्राप्त होता हैं।
इच्छामि भंते! पंचमहागुरूभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, अट्ठमहापाडिहेर संजुत्ताण अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादिसुयणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयगुणपालणरयणाणं सव्वसाहुणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मन्झं।
हे भगवान्! मैने पंचमहागुरूभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करता हूँ। आठ महाप्रातिहार्यों से सहित अरहंत, आठ गुणों से संपन्न तथा उर्ध्वलोकके मस्तकपर स्थित सिद्ध, आठ प्रवचनमातृकासे संयुक्त आचार्य, आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश करने वाला उपाध्याय और रत्नत्रयरूपी गुणों पालन करने में तत्पर सर्व साधुओं की मैं नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, और नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान के गुणों की संप्राप्ति हो।

निजी हैसियत में आए नेता से कहा पार्टी को कड़ा कदम उठाने दें
सुनवाई के दौरान बेंच ने याचिकाकर्ता के हस्तक्षेप के अधिकार पर भी सवाल उठाए। बेंच ने अभिषेक मनु सिंघवी से पूछा कि वह किसकी ओर से पेश हुए हैं। सिंघवी ने बताया कि वह गुजरात में मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस के सचिव हैं। इस पर बेंच ने कहा कि उनका क्लाइंट निजी हैसियत में आया है। कोर्ट आने के लिए उनकी पार्टी को कड़ा कदम उठाने दें। सिंघवी ने कहा, ''फिर हम चुनाव आयोग जाना चाहते हैं। हमें इसकी इजाजत दें।' इस पर बेंच ने नाराजगी जताते हुए कहा, ''यह हम कौन हैं? आपने अभी कहा कि आप केवल एक व्यक्ति और निजी हैसियत में आए हैं। आप हम नहीं केवल में बोलिए।'

सरल (शुद्ध) होना सहज व कुटिल(अशुद्ध) होना विषम/(जटिल)
आचार्य कनकनंदी
(चालः आत्मशक्ति)
सरल-सहज होते हैं शुद्ध द्रव्य, जो मौलिक व स्वतंत्र हैं।
इससे विपरीत होते अशुद्ध द्रव्य, जो बन्ध से विकृत हैं।
'वस्तु स्वभाव धर्म' होने से, स्वभावमय होता परमधर्म।
स्वस्वभावमय द्रव्य से (शुद्ध द्रव्य) हर द्रव्य ही स्वयं का स्वयं धर्म ।। (1)

(यथा) आकाश (व) काल-व-धर्म-अधर्म, शाश्वतिक होते शुद्ध द्रव्य।
स्व-स्व-धर्म/(स्वभाव) में स्थित होने से,उनमें न होता विकार।
शुद्ध जीव व शुद्ध परमाणु (भी) होते स्व-स्व धर्म में स्थित।
अशुद्ध जीव व अशुद्ध पुद्गल, बन्ध अवस्था में अतः विकृत।। (2)

गाथा-एयत्त णिच्छयगओ, समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बन्ध कहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होई।। (3 समयसार)
दो में होता है बन्ध व द्वन्द्व, एक में ही न होता बन्ध-द्वन्द।
आकर्षण-विकर्षण संयोग-वियोग, युगल में होते संभव।। (3)

तथाहि मैथुन (व) मंथन घर्षण-ताडन व ऊँच-नीच।
छोटा-बड़ा व अपना-पराया, ये सब में होते द्वन्द्व बन्ध।
एक सिद्ध में होते अनेक सिद्ध समाहित, तथापि उनमें नहीं द्वन्द्व न बन्ध
आकार-काल आदि भिन्न होने पर भी, शुद्ध होने से नहीं होता द्वन्द्व।। (4)
समानान्तर सरल रेखायें अनन्त, दूरी तक भी न काटते परस्पर।

किन्तु वक्र रेखेयें (अनेक) अनन्त बार तक, काट सकती है परस्पर।
अनन्त सर्वज्ञों के अनन्त गुण भी, होते हैं परस्पर एक समान।
किन्तु एक ही अज्ञानी-मोही के भाव में, होते अनन्त-असमान। (विषम)।। (5)

भोग भूमिज भद्र परिणामी (सरल), अनेक पशु-पक्षी व मानव।
कभी न करते कलह (युद्ध) दीर्घकाल तक, रहते वे सभी निर्द्धन्द्ध।
द्रव्य स्वभाव सहज होने से जो जितना होता जाता है सहज। (शुद्ध)
उनमें उतनी सरलता आती-जाती, उतने अंश में न होते द्वन्द्व।। (6)

विश्व के हर द्रव्य व जीव में, यह सभी होते हैं संभव।
शुद्धता में ही है सहजता तथा, सहजता में ही है सरलता।
सत्य ही होता है शिव व शिव ही होता है मंगल।
सत्य-शिव-सुन्दर बनने हेतु, 'कनक' करे सदा प्रयत्न।। (7)

ओबरी- 20.12.2017 रात्रि- 8.16
(मेरे अनेक साधु-साध्वी व भक्त-शिष्य मुझे भोला व सरल कहते हैं, इससे प्रेरित होकर यह कविता बनी।)

संदर्भ आर्जव धर्म (सरलता धर्म)
आर्जवं-स्वर्ग-सोपानं कौटिल्यादिविवर्जितम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये।।(1)
आर्जव धर्म स्वर्ग का सोपान है और कुटिलता से रहित है। उसकी मैं भक्तिपूर्वक आर्जव धर्म की प्राप्ति के लिए बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ।
धम्महु वर-लक्खणु अज्जउ थिर-मणु दुरिय-विहंडणु सुह-जणणु।
तं इत्थ जि किज्जइ तं पालिज्जइ तं णि सुणिज्जइ खय-जणणु।।(2)
आर्जव धर्म का श्रेष्ठ लक्षण है, मन को वह स्थिर करने वाला है, पाप नाशक है और सुख को उत्पन्न करने वाला है। वह पापों का क्षय करने वाला है, इसलिए उसे आचरण में लाओ, उसी का पालन करो और उसी का श्रवण करो।
जारिसु णिजय-चित्ति चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहं पुणु भासिज्जइ।
किज्जइ पुणु तारिसु सुह-संचणु, तं अज्जउ गुण मुणहु अवंचणु।।(3)
अपने मन मैं जैसा विचार करे वही दूसरों से कहे और उसी प्रकार कार्य करे। इसे सुख का देने वाला निश्चल आर्जव धर्म जानो।
माया-सल्लु मणहु णिस्सारहु, अज्जउ धम्मु पवित्तु वियारहु।
वउ तउ मायावियहु णिरत्थउ, अज्जउ सिव-पुर-पंथहु सत्थउ ।। (4)
मन से मायाशल्य निकाल दो और पवित्र आर्जव धर्म का विचार करो। मायावी पुरूष के व्रत, तप सब निरर्थक है। आर्जव धर्म शिवपुर का प्रशस्त मार्ग है।
जत्थ कुडिल परिणामु चइज्जइ, तहिं उज्जउ धम्मु जि संपज्जइ।
दंसण-णाण सरूव अखंडउ, परम-अतींदिय-सुक्ख-कंरडउ।।(5)
जहाँ कुटिल परिणाम छोड़ दिये जाते हैं वही आर्जव धर्म प्राप्त होता है। यह अखण्ड दर्शन और ज्ञान रूप है तथा परम अतिन्द्रिय सुख का पिटारा है।
अप्पिं अप्पउ भवहु तरंउ, एरिसु चेण-भावं पंयंउ।
सो पुणु अज्जउ धम्मे लब्भइ, अज्जवेण वइरिय-मणु खुब्भइ।। (6)
स्वयं ही आत्मा को भव समुद्र से तारने वाला है। इस प्रकार का प्रचण्ड जो चैतन्य भाव है वह आर्जव धर्म से ही प्राप्त होता है। आर्जव धर्म के कारण शत्रु का मन भी क्षुब्ध हो जाता है।
अज्जउ परमप्पउ गय-संकप्पउ चिम्मित्तु जि सासउ अभउ।
तं णिरू झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ जिहिं अचल-पउ।।(7)
आर्जव धर्म परमात्म-स्वरूप है, संकल्प रहित है, चैतन्य स्वरूप आत्मा का मित्र है, शाश्वत है और अभय रूप है। जो उसका ध्यान करता है और शंका का त्याग करता है उसे अविनाशी मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

रत्नत्रय और राग का फल
येनांऽशेन सुदृष्टिस्तेनाऽशेनाऽस्य बंधनं नाऽस्ति।
येनांऽशेन तु राग-स्तेनांऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। 212।।
येनांऽशेन तु ज्ञानं, तेनांऽशेनाऽस्यं बंधनं नास्ति।
येनांऽशेन तु रागस्तेनांऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। 213।।
येनांऽशेन चारित्रं, तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।

(In very thought activity) there is no bondage so far as there is right helief; there is bondage so far as there is passion. (In every thought activity) there is no bondage so far as there is knowledge, there is bondage so far as there is passion.(In every thought activity) there is no bondage so far there is conduct; there is bondage so far as there is passion.

व्याख्यां-भावानुवाद :- जिस अंश से सुदृष्टि होता है उस अंश से सम्यक् दर्शन होता है। उस सुदृष्टि रूप अंश से उस सम्यक्त्व का कर्मबन्ध नहीं होता है। किन्तु जिस अंश से उस सम्यक, दृष्टि में भी राग होता है उस अंश से उस सम्यक् दृष्टि को भी कर्मबन्ध होता है।
जिस अंश से ज्ञान होता है उस अंश से कर्मबन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस ज्ञानी को कर्मबन्ध होता है।
जिस अंश से चारित्र होता है उस चारित्र अंस से कर्म बन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस चारित्र या चारित्रधारी को कर्मबन्ध होता है।
इसका भावार्थ यह है कि सराग रत्नत्रय में बन्ध होता है। वीतराग रत्नत्रय में बन्ध नहीं होता है।
समीक्षा :- जैसे- जिस अंश में प्रकाश होता है उस अंश में अन्धकार नहीं होता है तथा जिस अंश में अंधकार होता है उस अंश में प्रकाश नहीं होता है। प्रकाश जितने-जितने अंश में बढ़ता जाता है उसने उतने अंश में अन्धकार भी घटता जाता है। जितने जितने अंश में अन्धकार बढ़ता जाता है उतने-उतने अंश में प्रकाश घटता जाता है। इसी प्रकार जितने-जितने अंश में रत्नत्रयात्मक स्वभाव आत्मा में प्रकट होता है उतने-उतने अंश में वैभाविक भावरूपी कर्मबन्ध घटता जाता है। आचार्य उमास्वामी ने पात्र की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिकता का वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से इसी विषय को निम्न प्रकार से कहा है -
सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शननमोहपकोपशमकोपशान्त
मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणानिर्जराः ।।
सम्यकदृष्टि, श्रावक, विरत अनन्तानुबन्धिविसंयोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षमक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम में से असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। जब तक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती तब तक आस्रव और बंध की परम्परा चलती रहती है। यह बंध की परम्परा मिथ्यादृष्टि की अनादि से हैं। उसकी जो निर्जरा होती है वह सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा है। इसलिए मिथ्यादृष्टि केवल आस्रव और बंध तत्त्व का कर्त्ता है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव के ज्ञान एवं दर्शन में परिवर्तन हो जाता है,। जिस अंश में दर्शन ज्ञान चारित्र में सम्यक, भाव है उतने अंश में संवर, निर्जरा प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं चारित्र आत्मा का स्वभाव है।

पात्र की अपेक्षाा गुणश्रेणी निर्जरा और उसके द्रव्य प्रमाण और काल प्रमाण का वर्णन गोम्मटसार में निम्न प्रकार किया है :-

सम्मत्तुप्पत्तीये-सावय विरदे अणंत कम्मंसे।
दंसणमोहक्खवरो कषायउवसामगे य उवसंते।। 66।।
खवगे य खीणमोहे-जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति।। 67।।

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला कषायों का उपशम करने वाला 8-9-10 वें गुणस्थानवासी जीव, क्षीण-मोह,संयोगी केवली और अयोगी केवली दोनों प्रकार के जिन इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यात गुणी अधिक होती जाती है। और उसका काल इसके विपरीत है अर्थात् क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुण हीन है।

सम्यग्दृष्टि (अविरत) :- जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है, या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे-ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है या विष मूर्च्छित व्यक्ति को विष का एक देश वेग कम होने पर चेतना आती हैं अथवा पित्तादि विकार से मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छा हटने पर अव्यक्त चेतना आती है उसी प्रकार अनन्तकाय आदि एकेन्द्रियों में बार-बार जन्म-मरण परिभ्रमण करते-करते विशेष लब्धि से दो इन्द्रिय आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त त्रस पर्याय मिलती है। कभी मुनिराज कथित जिन धर्म को सुनता है तथा कदाचित प्रतिबन्धी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है जैसे कतक फल के सम्पर्क से जल का कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल बन जाता है, उसी प्रकार मिथ्या उपदेश से अति मलिन मिथ्यात्व के उपशम से आत्मा निर्मलता को प्राप्त कर श्रद्धानाभिमुख होकर तत्वार्थ श्रद्धान की अभिलाषा के सन्मुख होकर कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा करता है। प्रथम सम्यक्त्वादि का लाभ होने पर अध्यवसाय (परिणामों) की विशुद्धि की प्रकर्षता से ये दर्सो स्थान क्रमशः असंख्येयगुणी निर्जरा वाले हैं। सादि अथवा अनादि दोनों ही प्रकार का मिथ्यादृष्टि जीव जब करण लब्धि को प्राप्त करके उसके अधः प्रवृत्तकरण परिणामों को भी बिताकर अपूर्वकरण परिणामों को ग्रहण करता है तब वह सातिशय मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। पूर्व की निर्जरा से अर्थात् सदा ही संसारवस्था या मिथ्यात्व दशा में होने वाली या पाई जाने वाली निर्जरा से असंख्यात गुणा अधिक हुआ करती है।

यह कथन गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की अपेक्षा से है। इसी से सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टि की जो निर्जरा होती है उस निर्जरा को यहाँ पर ईकाई रूप में स्वीकार किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र की अपेक्षा निर्जरा के स्थान दस हैं और गोम्मट्टसार की अपेक्षा निर्जरा के स्थान ग्यारह है परन्तु तत्त्वार्थसुत्र में जो अन्तिम स्थान 'जिन' है उसे सयोगी जिन रूप में विभक्त करने से तत्त्वार्थसूत्र में भी ग्यारह स्थान हो जाते हैं।

श्रावक (पञ्चम गुण स्थान) अवस्था प्राप्त होने पर जो कर्मों की निर्जरा होती है वह असंयत सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से असंख्यातगुणी अधिक होती है। इसी प्रकार विरतादि स्थानों में भी उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी अधिक अधिक कर्मों की निर्जरा हुआ करती है। तथा इस निर्जरा का काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा संख्यातगुणा हीन-हीन होता गया है अर्थात सातिशय मिथ्यादृष्टि की निर्जरा में जितना काल लगता है उससे संख्यात गुणा कम काल श्रावक की निर्जरा में लगा करता है। इसी प्रकार आगे के विरत आदि स्थानों के विषय में भी समझना चाहिए। अर्थात् उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हीन-हीन समय में ही उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्धि की अधिकता होते जाने के कारण कर्मों का निर्जरा असंख्यातगुणी अधिक-अधिक होती जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे मोहकर्म निःशेष होता जाता है वैसे-वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है और उसका द्रव्य प्रमाण असंख्यातगुणा-असंख्यागुणा अधिकाधिक होता जाता है। फलतः वह जीव भी निर्वाण के अधिक अधिक निकट पहुंचता जाता है। जहाँ गुणाकार रूप से गुणित निर्जरा का द्रव्य अधिकाधिक पाया जाता है। उन स्थानों में गुण श्रेणी निर्जरा कही जाती है।

ऋजुत्वमीषदारम्भपरिग्रहतया सह।
स्वभावमार्दवं चैव गुरूपूजनशीलता।। (40)
अल्पसंक्लेशता दानं विरतिः प्राणिघाततः।
आयुषो मानुषस्येति भवन्त्यास्रवहेतवः।। (41)

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के साथ परिणामों में सरलता रखना, स्वभाव से कोमल होना, गुरूपूजन का स्वभाव होना, अल्प संक्लेश का होना, दान देना और प्राणिघात से दूर रहना ये मनुष्यायु के आस्रव के कारण है।

(तत्त्वार्थसार-चतुर्थाधिकार पृ. 120)

स्वभाव मार्दवं च। (18)

Natural humble disposition is also the course of human age karma.

स्वभाव की अपेक्षा के बिना होने वाली कोमलता स्वाभाविक कहलाती है। मृदु का भाव या कर्म मार्दव है, स्वभाव से होने वाला अर्थात् परोपदेश के बिना होने वाला मार्दव स्वाभाविक मृदुता है। जो जीव स्वाभाविक मृदुता से सहित होते हैं वे भी मनुष्य आयु का आस्रव करते हैं। 17वें सूत्र में मनुष्य आयु के आस्रव का कारण बताने के बाद भी इस सूत्र में अलग से मनुष्य आयु के आस्रव का कारण बताने के बाद भी इस सूत्र में अलग से मनुष्य आयु के आस्रव का वर्णन इसलिये किया गया कि स्वाभाविक सरलता से मनुष्य आयु का आस्रव जैसे होता है वैसे ही देव आयु का आस्रव का भी कारण बनता है।

सब आयुओं का आस्रव

निःशील व्रतत्वं च सर्वेषाम (19)

Vowlessness and sub vowlessness with slight wordly activity and slight attachment, is cause of inflow of all kinds of age karmas.

शील रहित और व्रत रहित होना सब आयुओं का आस्रव है।

सूत्र में जो 'च' शब्द है वह अधिकार प्राप्त आस्रवों के समुच्चय करने के लिए है। इससे यह अर्थ निकलता है कि अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह रूप भाव तथा शील और व्रतरहित होना सब आयुओं के आस्रव हैं।

दिग्व्रत आदि सात शील और अहिंसादि पाँच व्रतों के अभाव से भी यदि कषाय मंद है और लेश्याएँ शुभ हैं तब देव और मनुष्य आदि शुभ आयु का आस्रव होता है और जब कषाय तीव्र है और लेश्याएँ अशुभ रहती हैं तब तिर्यंच और नरक आदि अशुम आयु का आस्रव होता है। इसलिए इस सूत्र में कहा है कि शील रहितता एवं व्रत रहितता से सम्पूर्ण आयु का आस्रव होता है।

जीवो चरित्तदंसण, णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्म पदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं।। 2।।

जो जीव दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित है निश्चय से उसे स्वसमय जानो और जो पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है उसे परसमय जानो।

एयत्तणिच्छयगओ, समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होई।। 3।।

स्वकीय शुद्धगुणपर्यायरूप परिणत अथवा अभेदरत्नत्रयरूप परिणमन करने वाला एकत्वनिश्चय को प्राप्त हुआ समय ही आत्मा ही समस्त लोक में सुंदर है। अतः एकत्वके प्रतिष्ठित होने पर उस आत्म पदार्थ के बंधकी कथा विसंवादपूर्ण है मिथ्या है।

जबकि संसार के समस्त पदार्थ स्वस्वरूप में में निमग्न होकर पर पदार्थ से भिन्न हैं तब जीवद्रव्य द्रव्य के साथ संबंध को कैसे प्राप्त हो सकता है ?।।

सुपरिचिदाणुभूदा, सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।। 4।।

कामभोग और बंधकी कथा सभी जीवों के श्रुत है, परिचित है और अनुभूत है, परंतु पर पदार्थों से पृथक एकत्वकी प्राप्ति सुलभ नहीं है।

यह जीव काम, भोग और बंधसंबंधी चचां अनादिकाल से सुनता चला आ रहा है, अनादिसे उसका परिचय प्राप्त कर रहा

है और अनादि से ही उसका अनुभव करता चला आ रहा है, इसलिए उसकी सहसा प्रतीती हो जाती है। परंतु यह जीव संसार के समस्त पदार्थों से जुदा है और अपने गुणपर्यायों के साथ एकता को प्राप्त हो रहा है यह कथा इसने आज तक नहीं सुनी, न उसका परिचय प्राप्त किया और न अनुभव ही। इसलिए वह दुर्लभ वस्तु बनी हुई है।।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पाणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज परमाणं, चुक्किज्ज छलं ण घेत्तत्वं।।

मैं अपने निजविभव से उस एकत्व विभक्त आत्मा का दर्शन कराता हूँ। यदि दर्शन करा सकूँ उसका उल्लेख करा सकूँ तो प्रमाण मानना और कहीं चूक जाऊँ तो मेरा छल नहीं ग्रहण करना।।5।।

ण वि होदि अप्पमेत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ।।6।।

जो ज्ञायक भाव है अर्थात् ज्ञानस्वरूप शुद्ध जीवद्रव्य है वह न अप्रतम है ओर न प्रमत्त ही है। इस प्रकार उसे शुद्ध कहते हैं, वह तो जैसा जाना गया है उसी रूप है।

जो जीव पर पदार्थ के संबंध से अशुद्ध हो रहा है उसी में प्रमत्त और अप्रमत्त का विकल्प सिद्ध होता है, परंतु जो पर पदार्थ के संबंध से विविक्त है वह केवल ज्ञायक ही है - ज्ञात दृष्टा ही है।।

ववहारेणुवदिस्सइ, णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
णवि णाणं व चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो।। 7।।

ज्ञानी जीव के चारित्र है, दर्शन है, ज्ञान है यह व्यवहार नयसे कहा जाता है। निश्चय नय से न ज्ञान चरित्र है और न दर्शन है। वह तो एक ज्ञायक ही है इसलिए शुद्ध कहा गया है।।

जह णवि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा ण गाहेउं
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसण मसक्कं।।8।।

जिस प्रकार म्लेच्छजन मलेच्छ भाषा के बिना वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिए शक्य नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश शक्य नहीं है।

जो हि सुएणहिगच्छइ, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुयकेवलिमिसिणो, भणंति लोयप्पईवयरा।।9।।
जो सुयणाणं सव्वं, जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं, जम्हा सुयकेवली तम्हा ।। 10।।

जो निश्चय कर श्रतुज्ञान से इस अनुभव गोचर केवल एक शुद्ध आत्मा को जानता है उसे लोक को प्रकाशित करने वाला ऋषिश्वर श्रुतकेवली कहते हैं। यह निश्चय नयसे श्रुतकेवली का लक्षण है। अब नय से श्रुतकेवलीका लक्षण कहते हैं। जो समस्त श्रुतज्ञान को जानता है जिनेंद्रदेव उसे श्रुतकेवली कहते हैं। यतः सब ज्ञान आत्मा है अतः आत्मा को ही जानने से श्रुतकेवली कहा जा सकता है।

व्यवहार नय अभूतार्थ है - असत्यार्थ है और शुद्ध नय भूतार्थ-सत्याथं कहा गया है। जो जीव भूतार्थ नय का आश्रय करता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि होता है।

सुद्धो सुद्धादेसो, णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण, जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। 12।।

जो परमभाव अर्थात् उत्कृष्ट दशा में स्थित हैं उनके द्वारा शुद्ध तत्त्व का उपदेश करने वाला शुद्ध निश्चय नय जानने योग्य है और जो अपरम भाव में स्थित है अर्थात् अनुत्कृष्ट दशा में विद्यमान है व व्यवहार नय से उपदेश करने योग्य हैं।।

भूयत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा या पुण्यपावं चं।
आसवसंवरजिणज्जरबंधो मोक्खो य सम्मतं।।13।।

निश्चय नय से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष हो सम्यक्त्व हैं। यहाँ विषम-विषयी में अभेद की विवक्षा कर जीवाजीवादि पदार्थों ही सम्यकत्त्व कह दिया है।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियंद।
अविसेसमसंजुत्तु, तं सुद्धणयं वियाणीहि।। 14।।

जो नय आत्मा को बंधरहित, परके स्पर्श से रहित, अन्यपने रहित, चंचलता रहित, विशेष रहित और अन्य पदार्थ के संयोग रहित अवलोकन करता है जानता है उसे शुद्ध नय जानो।।

जो पुरूष आत्मा को अबद्धस्पृष्टं अनन्य, अविशेष तथा उपलक्षण से नियत और असंयुक्त है वह द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप समस्त जिनशासन देखता है जानता है ।।

दंसणणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ।। 16।।

साधु पुरूष के द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र निरंतर सेवन करने योग्य हैं और उन तीनों को ही निश्चय से आत्मा जानो। यहाँ अभेद नय से गुणगुणी में अभेद विवक्षा कर सम्यग्दर्शनादि को आत्मा को एक रूप कहा है।

कम्मे णोकम्मम्हि य, अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धि, अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ।। 11।।

जब तक इस जीव के कर्म और नोकर्म 'मे कर्म नोकर्मरूप हूँ और ये कर्म नोकर्म मेरे हैं निश्चय से ऐसी बुद्धि रहती है तब तक अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी रहता है।

अहमेंदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा।।20।।
आसि मम पुव्वमेंदं, अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि।
होदिदि पुणोवि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि ।। 21 ।।
एयत्तु असंभूदं, आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो, ण करेदि दु तं असंमूढो।। 22।।

'चेतन, अचेतन अथवा मिश्ररूप जो कुछ भी परपदार्थ हैं मैं उन रूप हूँ, वे मुझ रूप हैं, मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं, पूर्व समय में वे मेरे थे, मैं उनका था, भविष्यत् में फिर मेरे होंगे और मैं उनका होऊँगा जो पुरूष इस प्रकार मिथ्या आत्मविकल्प करता है वह मूढ है अप्रतिबुद्ध है अज्ञानी है और जो परमार्थ वस्तु स्वरूप को जानता हुआ उस मिथ्या आत्मविकल्प को नहीं करता है वह अमूढ़ है - प्रतिबुद्ध है ज्ञानी है।

भावार्थ - जो आत्मा को अन्य रूप अथवा अन्य का स्वामी मानता है वह अज्ञानी है और जो आत्मा को आत्मरूप तथा परको पररूप जानता है वह ज्ञानी है।

आगे अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिए उपाय कहते हैं

अण्णाणमोहिदमदी, मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बुद्धमबद्धं च तहा, जीवो बहुभावसंजुत्तो।। 23।।
सव्वण्हुणादिट्ठो, जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
किह सो पुग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।।24।।
जदि सो पुग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सत्तो वत्तुं जे, मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं।।25।।

जिसकी बुद्धि अज्ञान से मोहित हो रही है ऐसा पुरूष कहता है कि यह शरीरादि बद्ध तथा धनधान्यादि अबद्ध पुद्गल द्रव्य मेरा है और यह जीव अनेक भावों से संयुक्त है। इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि सर्वज्ञ के ज्ञान के द्वारा देखा हुआ तथा निरंतर उपयोग लक्षण वाला जीव पुद्गलद्रव्यरूप किस प्रकार हो सकता है? जिससे कि तू कहता है कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। यदि जीव पुद्गलद्रव्यरूप होता है तो पुद्गल भी जीवपने को प्राप्त हो जावेगा और तभी यह कहा जा सकेगा कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।

जिस प्रकार नगर जुदा है, राजा जुदा है, उसी प्रकार शरीर जुदा है और उसमें रहने वाला केवली जुदा है अतः शरीर के स्तवन से केवली का स्तवन निश्चय नय ठीक नहीं मानता है।।

जो इंदिये जिणत्ता, णाणसहावाधिअं मुणादि आद।
तं खलु जिदिंदियं ते, भणंति जे णिच्छिदा साहू ।। 31।।
जो इंद्रियों को जीतकर ज्ञानस्वरूप से अधिक आत्मा को जानता है उसे नियम से, जो निश्चय नय में स्थित साधु हैं वे जितेंद्रिय कहते हैं।
जो मोहं तु जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहूं, परमट्ठवियाणया विंति।।32।।
जो मोह को जीतकर ज्ञानस्वभाव से अधिक आत्मा को जानता है उस साधु को परमार्थ के जानने वाले मुनि जितमोह कहते हैं।
जिदमोहस्स दु जइया, खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो, भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ।।33।।
मोह को जीतने वाले साधु का मोह जिस प्रकार समय क्षीण हो जाता है नष्ट हो जाता है उस समय निश्चय के जानने वाले मुनियों के द्वारा वह क्षीणमोह कहा जाता है।
सव्वे भावा जम्हा, पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणेयव्वं।।34।।
चूँकि ज्ञानी जीव अपने सिवाय समस्त भावों पर हैं ऐसा जानकर छोड़ता है इसलिए ज्ञान को ही नियम से प्रत्याख्यान जानना चाहिए।
जह णाम कोवि पुरिसो, परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे, णाऊण विमुंचदे णाणी।। 35।।
जिस प्रकार कोई पुरूष 'यह परद्रव्य है' ऐसा जानकर उसे छोड़ देता है उसी प्रकार ज्ञानी जीव समस्त परभावों को ये पर हैं ऐसा जानकर छोड़ देता है।
णत्थि मम को वि मोहो, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया विंति।।36।।
जो ऐसा जाना जाता है कि 'मोह मेरा कोई भी नहीं है, मैं तो एक उपयोगरूप ही हूँ' उसे आगम के जानने वाले मोह से निर्ममत्वपना कहते हैं।
णत्थि मम धम्मआदी, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया विंति ।। 37।।
जो ऐसा जाना जाता है कि धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं तो एक उपयोग रूप हूँ उसे आगम के जानने वाले धर्मादि द्रव्यों से निर्ममत्वपना कहते हैं।
णत्थि मम धम्मआदी, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया विंति।।37।।
जो ऐसा जाना जाता है कि धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं तो एक उपयोग रूप हूँ उसे आगम के जानने वाले धर्मादि द्रव्यों से निर्ममत्वपना कहते हैं।
अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइयो सदाऽरूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्त पि।। 38।।
निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ, परमाणुमात्र भी अन्य द्रव्य मेरा कुछ नहीं है।

आचार्य कनकनंदी द्वारा रचित
पद्यात्मक कृतियाँ (गीतांजली)
(1) बाल - आध्यात्मिक गीतांजली
(2) प्रौढ-आध्यात्मिक गीतांजली
(3) जैन - आध्यात्मिक गीतांजली
(4) नैतिक आध्यात्मिक गीतांजली
(5) प्रकृति (पर्यावरण) गीतांजली
(6) विविध गीतांजली
(7) आत्म कल्याण - विश्व कल्याण गीतांजली
(8) महान् आध्यात्मिक-वैज्ञानिक तीर्थकरों के व्यक्तित्व-कृतित्व-शिक्षा गीतांजली
(9) समीक्षा गीतांजली
(10) विश्व शांति गीतांजली (गद्य-पद्यमय)
(11) सर्वोदयी गीतांजली (गद्य-पद्यमय)
(12) स्वास्थ्य गीतांजली
(13) आधुनिक गीतांजली
(14) सर्वोदय शिक्षा गीतांजली
(15) ब्रह्माण्डीय विज्ञान गीतांजली
(16) मानवीय गीतांजली
(17) नारी गीतांजली (गद्य-पद्यमय)
(18) अनुभव गीतांजली
(19) भारतीय गीतांजली
(20) जैन एकता एवं विश्व शांति गीतांजली
(21) धर्म गीतांजली
(22) सफलता गीतांजली
(23) चिंतन-स्मरण गीतांजली
(24) कथा-आत्मकथा गीतांजली
(25) धर्म-दर्शन गीतांजली
(26) सर्वोदय गीतांजली
(27) अनुशासन गीतांजली
(28) व्यक्तित्व-विकास गीतांजली
(29) जीवन प्रबंध गीताजंली
(30) उपलब्धि गीतांजली
(31) भावना गीतांजली
(32) मैं (अहम्) गीतांजली
(33) स्वाध्याय गीतांजली
(34) संस्कृति-विकृति गीतांजली
(35) आत्म-चिंतन गीतांजली
(36) विश्लेषण-आत्म विश्लेषण गीतांजली
(37) समस्या समाधान गीतांजली
(38) आदर्श जीवन गीतांजली
(39) रहस्य गीतांजली
(40) गुरू गीतांजली
(41) सत्य-साम्य सुख गीतांजली
(42) मैं (अहम्) ध्यान गीतांजली
(43) आध्यात्मिक रहस्य गीतांजली
(44) धर्म-अधर्म मीमांसा गीतांजली

(45) निंदा पुराण गीतांजली
(46) आध्यात्म बोध गीतांजली
(47) पुण्य-पाप मीमांसा गीतांजली
(48) नैतिक-शिक्षा-सामान्य ज्ञान-अनुभव गीतांजली
(49) परम-स्वतंत्रता गीतांजली
(50) जैन धर्म रहस्य गीतांजली
(51) शुद्ध-बुद्ध-आनंद गीतांजली
(52) स्वधर्म/सुधर्म गीतांजली
(53) आध्यात्मिक संस्कृति गीतांजली
(54) नैतिक धार्मिक आध्यात्मिक गीतांजली
(55) समालोचना गीतांजली
(56) जैन सिद्धांत रहस्य गीतांजली
(57) आत्मकथा-आत्मव्यथा गीतांजली
(58) आत्मज्ञान गीतांजली
(59) निस्पृह साधक गीतांजली
(60) जीने की कला गीतांजली
(61) आत्मानुशासन गीतांजली
(62) वैश्विक समस्या-समाधान गीतांजली
(63) सर्वोत्तम गीतांजली
(64) हित-अहित गीतांजली
(65) जीव-विज्ञान गीतांजली
(66) पूजा-प्रार्थना आरती गीतांजली
(67) आध्यात्मिक शक्ति गीतांजली
(68) आत्मसाधना गीतांजली
(69) श्रेष्ठता गीतांजली
(70) आध्यात्मिक दशधाधर्म गीतांजली
(71) विमुक्ति उपाय गीतांजली
(72) जैन शासन गीतांजली
(73) आत्म संबोधन गीतांजली
(74) आध्यात्मिक प्रेम गीतांजली
(75) आत्मविकास गीतांजली